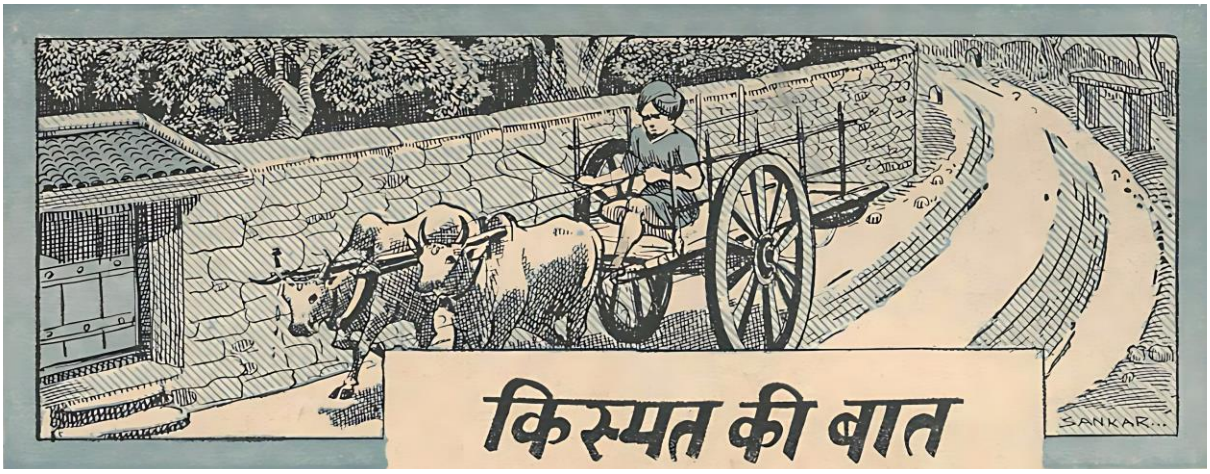
चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र





किस्मत की बात

एक गाँव में दो भाई रहा करते थे। बड़ा भाई रईस जमींदार था और छोटा गरीब काश्तकार। एक बार छोटे भाई को खेत में खाद ले जानी थी। इसलिये उसने भाई के पास जाकर बैल-गाड़ी माँगी। भाई देने को मान गया, बशर्ते कि वह बैलों को खूब खिलाये-पिलाये और शाम होने से पहले उन्हें घर वापिस ले आये। छोटा भाई अपना काम खतम कर गाड़ी को जल्दी वापिस ले जा रहा था कि उसकी लापरवाही की वजह से, एक बैल का सीङ्ग दीवार से टकरा लगभग जड़ से टूट गया।

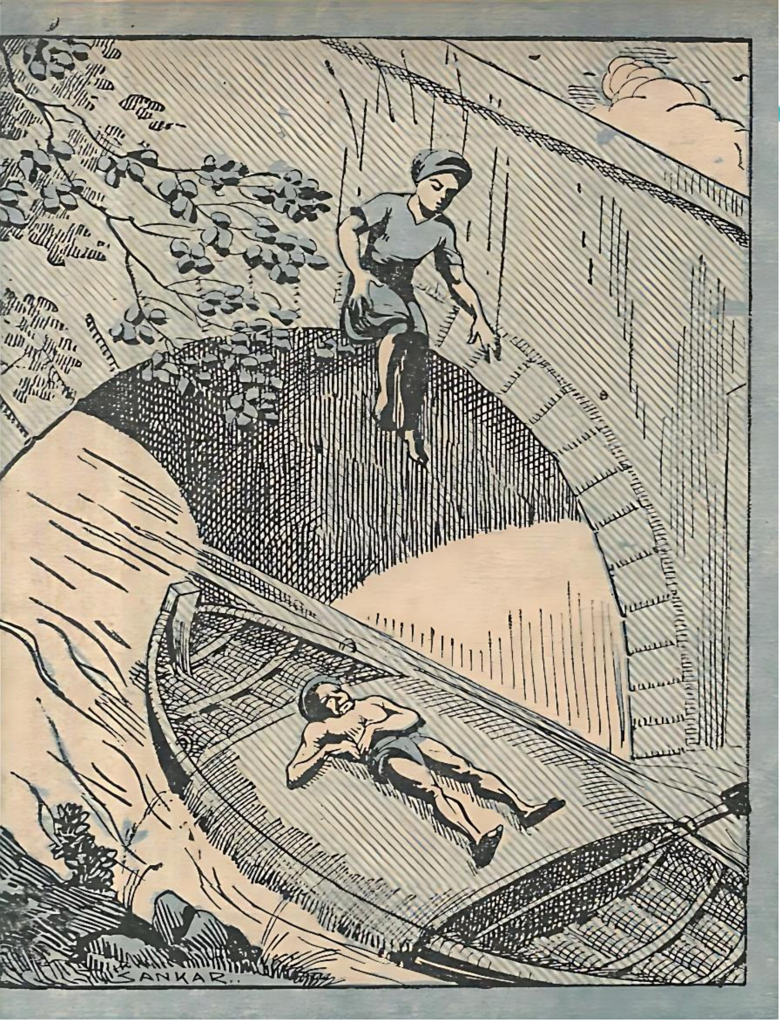
बड़े भाई को गुस्सा आया। उसने छोटे भाई पर मुकद्दमा चलाने की ठानी। पञ्चायतदार किसी और गाँव में था। वे दोनों झट उस गाँव के लिये रवाना हुये। गाँव के मुखिया के घर रात काटी।

मुखिया ने बड़े भाई की तो खूब आवभगत की, पर छोटे भाई को पूछा तक नहीं। छोटा भाई बैठक में एक बेञ्च पर लेटा हुआ था। थके हुये होने की वजह से वह जल्द ऊँघने लगा। नींद में, वह बेञ्च पर से लुढ़क कर नीचे जा गिरा। नीचे चटाई पर मुखिया का एक वर्ष का पोता सो रहा था। छोटे भाई के गिरने से उस लड़के का पैर टूट गया। वैद्य ने आकर बताया कि वह जिन्दगी भर लङ्गड़ा ही रहेगा।

मुखिया को बड़ा गुस्सा आया। उसने भी छोटे भाई पर दावा करने की ठानी। वह भी पञ्चायतदार के पास चला।

पञ्चायतदार के घर का रास्ता एक नहर के ऊँचे पुल पर से गुज़रता था। मुखिया, बड़ा भाई और उसका भाई, ज्योंही पुल पर आये, तो छोटे भाई को आत्महत्या

श्री जगदीश प्रसाद सिगल



करने की सूझी। जो कुछ उसने किया था. वे कसूर ही तो थे? भला पञ्चायतदार भी क्या और कह सकेगा ?

"यूँ तो गरीबी की जिन्दगी है। फिर तिसपर जेल की आफ़त भी क्यों?"

यह सोचकर छोटा भाई पुल पर से नहर में कूदा। परन्तु उसी समय पुल के नीचे से एक नाव गुज़र रही थी। उस नाव की छत पर एक आदमी सो रहा था। छोटा भाई उस पर जा गिरा और उस आदमी की तुरन्त मृत्यु हो गई।

उस आदमी के लड़के ने, छोटे भाई को खरी-खोटी सुनाई, और वह भी उसके विरुद्ध फ़रियाद करने औरों के साथ चल पड़ा। छोटे भाई का दिल जलने लगा। वह जो भी करता, वह कसूर हो जाता। आखिर करे क्या?

"ये कसूर मैंने अनजाने किये हैं। इस बार जान-बूझकर करूँगा। अगर मेरे विरुद्ध पञ्चायतदार ने निर्णय किया तो मैं उसका सिर फोड़ दूँगा।" यह सोचकर छोटे भाई ने रास्ते में पड़े एक ईंट के टुकड़े को लेकर अपने तौलिये में बाँध लिया। वह भी औरों के साथ पञ्चायतदार के पास चलता गया।

पहले पहल बड़े भाई ने छोटे भाई पर आरोप लगाया। उसने कहा कि उसने उसकी गाड़ी ले जाकर इस्तेमाल ही नहीं की, बल्कि जान-बूझकर उसके बैल के सीङ्ग भी तोड़ दिये। उसी समय छोटे भाई ने तौलिये में बँधी ईंट की पोटली ऊपर उठाकर पञ्चायतदार को दिखायी।

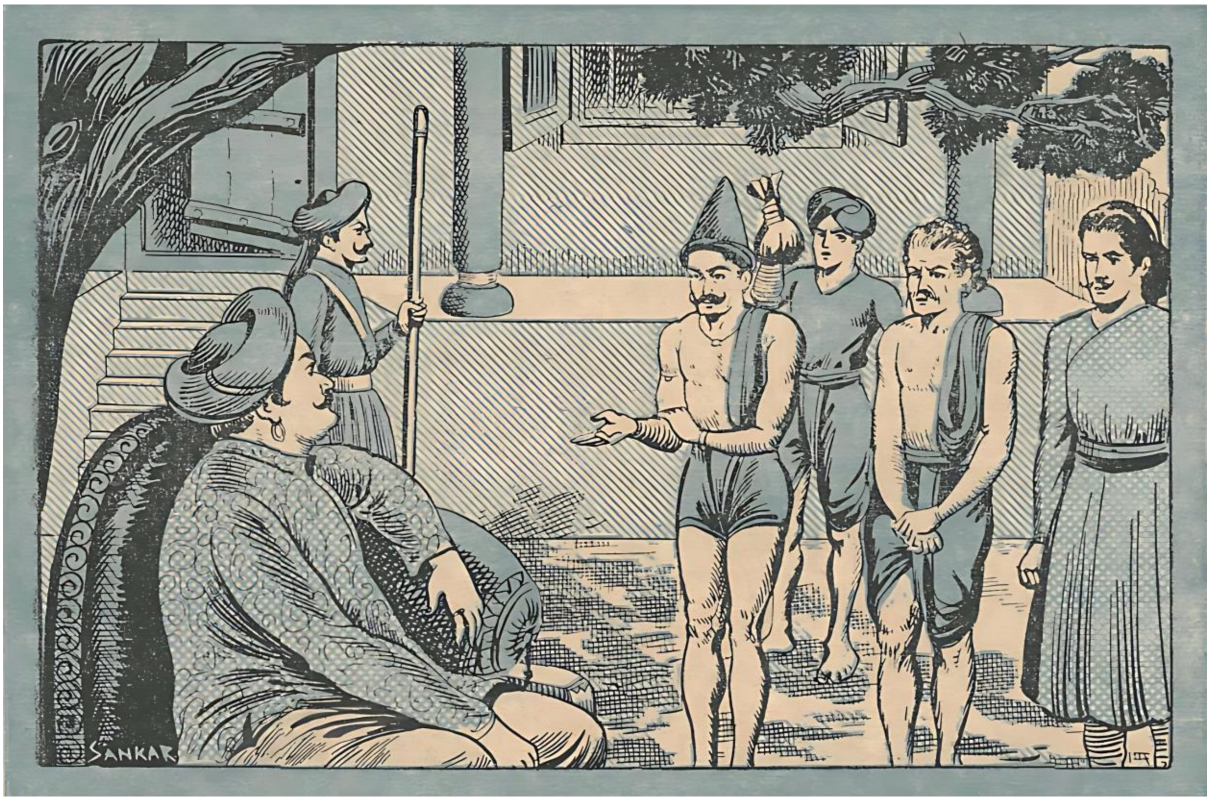
पञ्चायतदार ने सोचा कि मुज़रिम उसको सौ रुपये की घूस देने का इशारा कर रहा है। उसने यों फैसला दिया-

"क्योंकि इसने तेरे बैल के सीङ्ग तोड़ दिये हैं, इसलिये बैल के सीङ्ग बड़े होने तक, अपने खर्च पर, बैलों को यह अपने पास रखे।" दूसरा दावा गाँव के मुखिया का था। उसकी शिकायत थी कि मुज़रिम ने बेञ्च पर से गिरकर उसके पोते की टाँग हमेशा के लिये तोड़ दी है।

इस बार भी छोटे भाई ने ईंट की पोटली दिखाकर पञ्चायतदार को डराया। पञ्चायतदार ने सोचा-"इस बार भी सौ रुपये की रकम धूस में मिल रही है, उसने यों अपना निर्णय दिया-

"क्योंकि आपके पोते की टाँग हमेशा लिये मुज़रिम ने तोड़ दी है, इसलिये मुज़रिम अपने एक वर्ष के लड़के को आपको दे, और वह आपके लँगड़े पोते को ले। अगर मुज़रिम के एक साल का कोई लड़का नहीं है, आप तब तक इन्तज़ार कीजिये, जबतक उसके एक लड़का न हो जाय।"

तीसरी फ़रियाद नाव के मुसाफ़िर के लड़के की थी। मुज़रिम के पुल पर से नाव की छत पर कूदने के कारण, वहाँ सोये हुये फ़रियादी के पिता की मौत हो गई थी। इसलिये मुज़रिम को मुनासिब सज़ा मिलनी चाहिये।





तीसरी बार छोटे भाई ने फिर अपनी पोटली पञ्चायतदार को दिखाई। पञ्चायतदार ने सोचा कि एक सौ रुपये उसके हाथ लग रहे हैं। उसने बड़े खुश होकर यह फ़ैसला दिया-

"मुज़रिम नाव पर सफ़र करे, और नाव के ठीक पुल के नीचे आने पर फ़रियादी पुल पर से मुज़रिम पर कूदे।"

मुकद्दमे खतम हुये। छोटे भाई ने सोचा कि आफ़त टली। वह खुशी खुशी बाहर आ रहा था कि पञ्चायतदार के नौकर ने उसके पास आकर कहा-"बाबूजी ने आपसे तुरन्त तीन सौ रुपये ले आने के लिये कहा है।"

"तीन सौ रुपये क्या बला है?" छोटे भाई ने पूछा।

"तीन मुकद्दमों के लिये तीन सौ रुपया घूस देने के लिये, सुना है, आपने अपनी पोटली दिखाई थी।" नौकर ने पूछा।

यह सुनते ही छोटा भाई आग बबूला हो उठा।

"अच्छा, तो देख! इस पोटली में पैसा नहीं है, पर ईंट है। अगर तेरा मालिक मेरे बर्खलाफ फैसला देता, तो मैं उसका खोपड़ा फोड़ देता; भले ही बाद में मुझे भुगतना पड़ता। मैंने उसी का इशारा किया था। जा, यह बता दे, अपने मालिक से।" उसने रौब से कहा।

जब पञ्चायतदार ने नौकर की बात सुनी, तो उसने सोचा-"अरे, बापरे बाप! जान तो बची। अच्छा हुआ, उसके विरुद्ध निर्णय न दिया। भाग्य अच्छे थे।"

छोटे भाई के अदालत के अहाते से बाहर आते ही, बड़े भाई ने उसके हाथ पकड़कर मनाते हुये कहा-"जाने दो, जो कुछ हुआ, सो हुआ। अगर तूने मेरा

बैल छोड़ दिया, तो मैं तुझे सौ रुपये दूँगा। बहुत कीमती बैल हैं।"

छोटे भाई ने कुछ न कहा। भाई की दी हुई रुपयों की थैली को, बिना खोले ही, उसने अपनी धोती में बाँध लिया।

थोड़ी दूर जाने के बाद गाँव के मुखिया ने छोटे भाई के पास जाकर कहा-"देख भाई! लँगड़ा हो या लूला, मेरे पोते को मेरे पास ही पलने दे। मैं तेरे घर चार गाड़ी अच्छा अनाज़ भिजवा दूँगा। और ले यह भी रख। अगर हमारे गाँव आकर, हमारे घर में दो-चार दिन न ठहरे, तो कहे देता हूँ कि अच्छा न होगा।" उसने भी छोटे भाई के हाथ में एक थैली थमा दी।

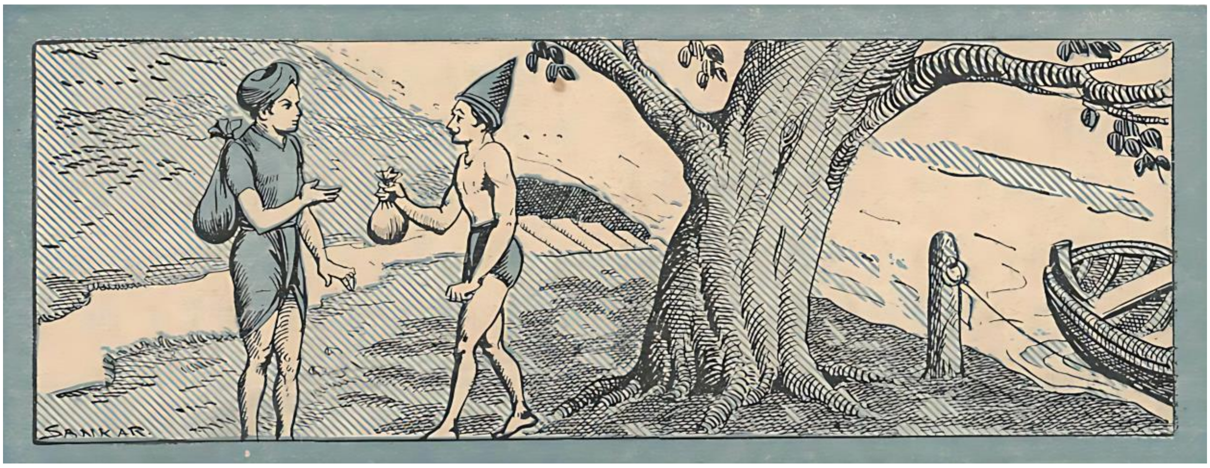
छोटे भाई ने मुखिया के हाथ से थैली ले ली, और कहा कि मौका मिलने पर वह ज़रूर उसके घर दो-चार दिन ठहरेगा।

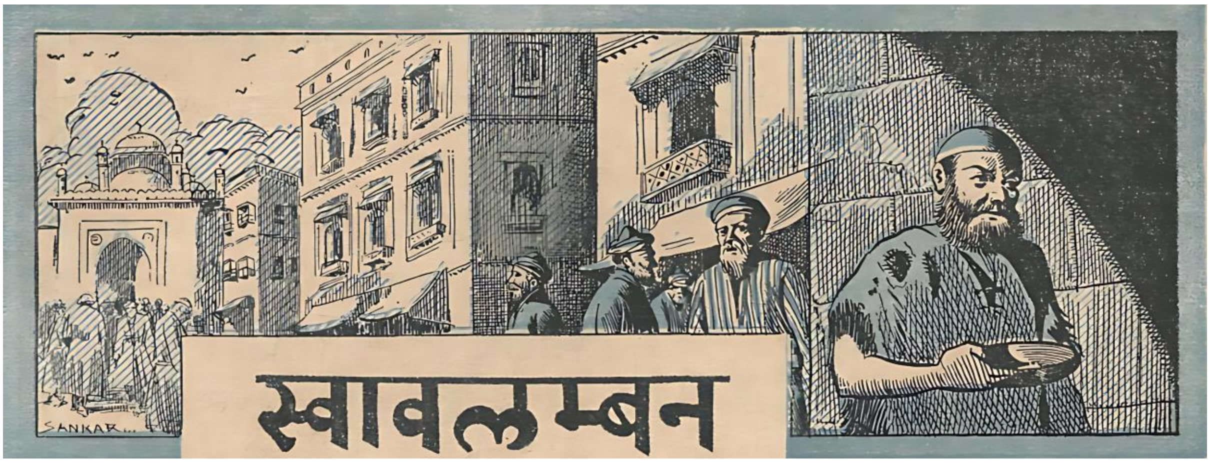
उसके बाद नाव का मुसाफ़िर उसके पास आया।

"महाराज! देखिये। मैं तो पहिले से ही शिकायत नहीं करना चाहता था, पर रिश्तेदारों ने मेरी एक न सुनी। फिर क्या आपने जान-बूझकर मेरे पिता को मारा है? आप मुझे छोड़ दीजिये। जो कुछ मुझसे बन सका, मैं आपको दे रहा हूँ।" कहते हुये उसने एक भारी थैली दी और राम राम करके चला गया।

इतने दिनों बाद छोटे भाई की गरीबी दूर हुई। वह यह सोचता हुआ कि कभी कभी बदी भी नेकी के लिये आया करती है, अपने घर गया।

उसने तब एक बैल का जोड़ा खरीदा और थोड़ी बहुत ज़मीन भी खरीदी। तब से वह खेती करता आराम से रहने लगा।





मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थस्थल; मक्का शहर में, एक बार खुदा के फ़रिश्ता मोहम्मद सड़क पर चले जा रहे थे। एक भिखारी उनके पास आकर गिड़गिड़ाने लगा-"गरीब को ख़ैरात दीजिये। खुदा आपका भला करेगा।"

मोहम्मद ने उस भिखारी को ऊपर से नीचे तक देखा। वह कोई खास बूढ़ा न था। हाथ में एक मिट्टी का खप्पर था। मैली-कुचैली, चीथड़े हुई लोई से तन ढाँपे हुये था। उसकी शक्ल पर लाचारी थी।

"क्या तू इतना गरीब है कि तुझे भीख माँगने की नौबत आ गई?" मोहम्मद ने पूछा।

"महाराज! इस दुनियाँ में अगर मेरी कोई चीज़ है, तो बस ये लोई और खप्पर ही हैं।" भिखारी ने बताया।

"अच्छा, तो उन्हें मुझे दे दे।" मोहम्मद ने कहा।

भिखारी मोहम्मद का मतलब समझ न पाया। उसने अपनी लोई और खप्पर उनको दे दी। तुरन्त मोहम्मद ने किसी राहगीर के हाथ उन्हें बेच दिया।

यूँ तो उनकी कीमत कुछ न थी। पर चूँकि बेचनेवाले खुद मोहम्मद थे, इसलिये उनके लिये अच्छे दाम मिल गये।

यह देख भिखारी छटपटाने लगा-"हुजूर! जो कुछ मेरे पास था, वह भी आपने बेच डाला। अगर लोई न हो, तो आज रात को मैं क्या ओढ़ूँगा? खप्पर के बगैर किस में मैं खाना खाऊँ?"

मोहम्मद ने यों जवाब दिया-"बेटा! वे तेरी चीजें नहीं हैं, बल्कि वे तेरी बुरी हालत की जड़ हैं। जब तक

श्री अब्दुल रहीम

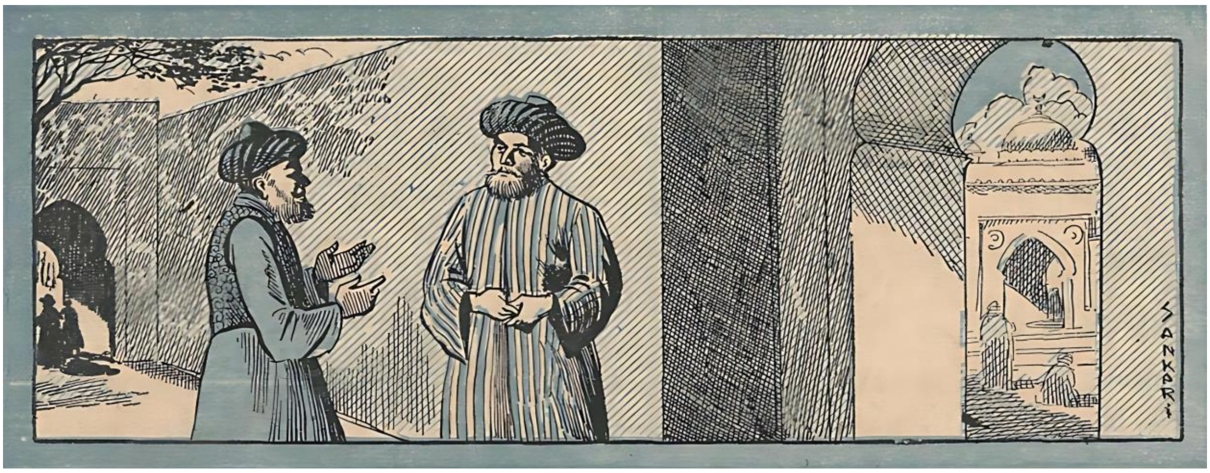
वे तेरे पास हैं, तब तक तुम में इन्सानियत नहीं है। जा, यह पैसा ले जा, और बाज़ार में जाकर एक कुल्हाड़ी खरीद ले। कुल्हाड़ी ले जाकर जङ्गल में लकड़ियाँ काट। उनको बाज़ार में लाकर बेच। और जो कुछ मिले, उससे भूख मिटा और कपड़े खरीद। शुरू शुरू में तुझे मेहनत की जिन्दगी बुरी लगेगी। मगर काम न छोड़ना। मुझे दो सप्ताह बाद फिर मिलना।"

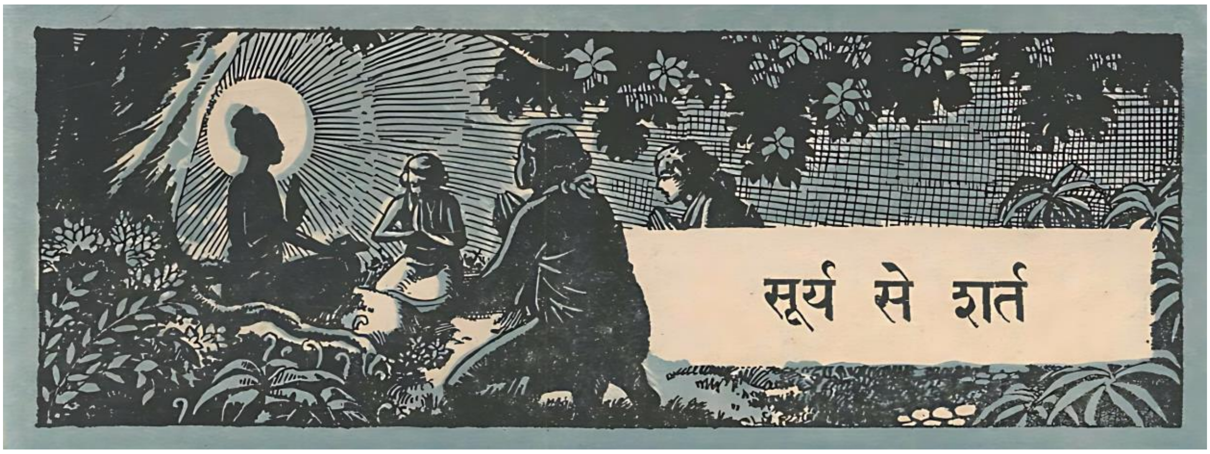
और कोई रास्ता न था, इसलिये भिखारी ने वही किया, जो फ़रिश्ते ने बताया था। उसने एक कुल्हाड़ी खरीदी। जङ्गल में जाकर, लकड़ियाँ काट लेता और उन्हें बेचकर अपनी रोज़ी बनाता।

दो सप्ताह बीत गये। वह आदमी फिर फरिश्ते को देखने आया। मोहम्मद उसे पहचान न पाये; क्योंकि उस आदमी की शक्ल पर पुरानी लाचारी न थी। बदन हट्टाकट्टा हो गया था। चाल में भी चुस्ती थी।

"हुज़ूर! आपने मुझे नई जिन्दगी बख्शी है। बिना किसी के सामने हाथ पसारे, मैं खुद अब अपना पेट पाल लेता हूँ। अब मैं किसी एक और की परवरिश भी कर लेता हूँ। मेरी सेहत भी अच्छी है।"

"हाथ जोड़कर उस रहमदिल अल्लाह की दुआ माँग। तूने अपनी जिन्दगी ही न सुधारी, बल्कि मुल्क की भी भलाई की। यह एक पाक जगह है। दुनियाँ के चारों कोनों से यहाँ हज़ारों लोग आते हैं। वे अपने अपने मुल्क को वापिस जाकर कहते हैं कि तेरे मुल्क में बेशर्म भिखारी हैं। क्या यह शर्म की बात नहीं है? मेहनत की जिन्दगी से बढ़कर कोई अच्छी जिन्दगी नहीं है।" मोहम्मद ने उसे समझाया।





जब ब्रह्मदत्त काशी का परिपालन कर रहा था, तब चित्रकूट प्रान्त में नब्बे हज़ार हँस रहा करते थे। उस समय बोधिसत्व हँस के रूप में पैदा हुये। क्योंकि वह हँस सुगुण सम्पन्न और सब से अधिक वेगवान था, इसलिये वह नब्बे हज़ार हँसों का मुखिया बन गया। और उस मुखिया का नाम था "राजहँस"।

एक बार राजहँस को अपने झुण्ड के साथ सरोवर में विहार कर घर वापिस जाते समय काशी राज्य पर भी मँडराने का मौका मिला। हँसों के झुण्ड को देखकर लगता था, मानों काशी राज्य को चारों ओर से सोने और चान्दी से मढ़ दिया गया हो। काशीराज ने भी आश्चर्य से देखा। राजहँस ने तो उसका मन और भी आकर्षित किया।

काशीराज जान गया कि राजहँस में राजोचित तेज़ व अभिमान था। अच्छे अच्छे फूल, पूजा सामग्री मँगाकर, उसने राजहंस का स्वागत किया। राजहँस ने भी उसका सम्मानपूर्ण स्वागत सस्नेह स्वीकृत किया। वह अपने झुण्ड के साथ, काशीराज का आतिथ्य स्वीकार कर कुछ दिनों तक वहाँ रहा, फिर घर वापिस चला गया।

तब से काशी राज की राजहँस के प्रति ममता दिन प्रति दिन बढ़ती गई। अब उसका मन हमेशा राजहँस पर रहने लगा। रात दिन उसी के बारे में सोचता रहता; कब, और कहाँ से वह राजहँस आयेगा, यह वह चौकन्ना हो, हज़ार आँखों से निरन्तर देखता रहता।

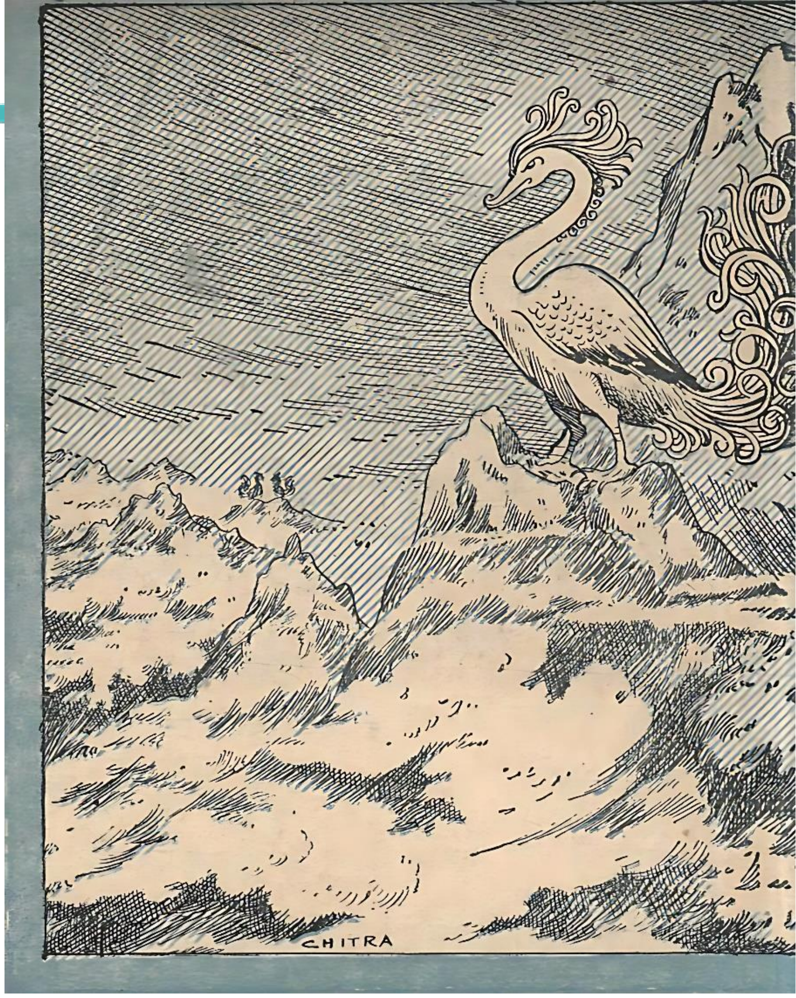
एक बार चित्रकूट प्रान्त में दो छोटे छोटे हँसों ने राजहँस से कहा -"हमें सूर्य

से शर्त लगाने की मर्जी हो रही है।" उन्होंने साफ़ अपने मन की बात कह दी।

यह सुन राजहँस ने उन्हें समझाया- "अरे बच्चो! सूर्य कहाँ और तुम कहाँ? उससे भला शर्त क्या लगाना? मूर्खता है ! सूर्य कितना वेगवान है, यह तुम नहीं जानते। इसलिये ही तुम्हें भ्रम हो गया है। तुम उसके साथ नहीं भाग सकोगे। फिर सम्भव है कि तुम्हारी जान पर खतरा ही आ पड़े। इसलिये तुम दोनों ज़िद न करो। पागलपन छोड़ दो।"

उन हँसों को राजहँस का यह उपदेश पसन्द न आया। उन्होंने फिर एक बार जाकर राजहँस की अनुमति माँगी। इस बार भी राजहँस ने वही कहा। मगर फिर भी वे हँस बाज़ न आये। उन्होंने तीसरी बार जाकर पूछा। इस बार भी राजहँस न माना।

इस तरह काम न चलेगा, यह सोचकर वे दोनों नादान छोटे हँस, राजहँस को बिना बताये युगन्धर पर्वत के शिखर पर उड़ गये। यह शिखिर इतना ऊँचा था, मानों वह साक्षात् सूर्य को ही छू रहा हो।



इसलिये उस शिखिर पर से सूर्य के साथ दौड़ लगाने का उन हँसों का इरादा था।

जब यथा नियम राजहँस ने अपने झुण्ड की गिनती की, तो उसने देखा कि दो हँस कम हैं। उसे बड़ा अफ़सोस हुआ। "अफ़सोस करने से क्या फायदा?" उसने सोचा; कुछ भी हो, उनकी मदद करनी चाहिये।

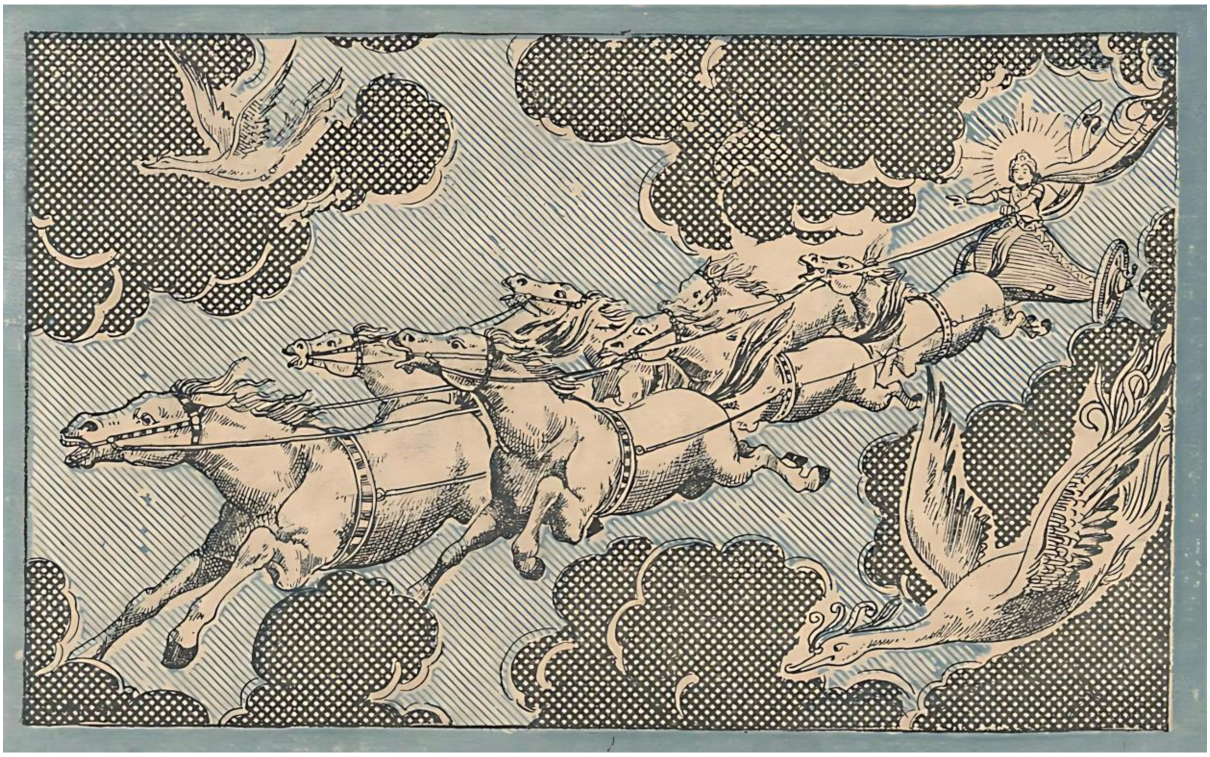
तुरन्त वह भी युगन्धर पहाड़ की चोटी पर पहुँचा, और बिना उन हँसों के जाने, एक जगह जाकर बैठ गया। सूर्योदय होते ही वे दोनों हँस के बच्चे सूर्य के

साथ उड़ने लगे। राजहँस भी उनके पीछे पीछे उड़ने लगा।

उन दोनों बच्चों में से छोटा हँस दोपहर तक उड़ता रहा। फिर उसके पँखों में गरमी पैदा हो गई, वह बुरी तरह थक गया जब वह गिरने को था, तो उसने राजहँस को देखकर हाँफते हाँफते कहा-"राजा! यह मेरे बस की बात नहीं है। मैं हार गया हूँ।" तब राजहँस ने ढाँढ़स बँधाया-"खैर, कोई बात नहीं, मैं तो हूँ न ?" उसको समझा-बुझाकर, अपने पँखों पर चढ़ा-कर अपने झुण्ड के पास वह छोड़ आया।

फिर थोड़ी देर बाद दूसरे हँस को लगा जैसे उसके पँखों में कोई सूई चुभा रहा हो। वह भी थक गया। वह भी राजहँस को देखकर गिड़गिड़ाया। उसको भी राजहँस ने आश्वासन दिया और अपने पँखों पर चढ़ाकर चित्रकूट पहुँचा दिया।

इस तरह अपने झुण्ड को दो हंसों का शर्त हार जाना राजहँस को गँवारा न था। उसने खुद शर्त लगाने की ठानी। वह अभी उड़ा ही था कि कुछ ही देर में सूर्य के पास पहुँच गया। देखते देखते वह सूर्य से भी आगे बढ़ गया। वह तो यह देखना

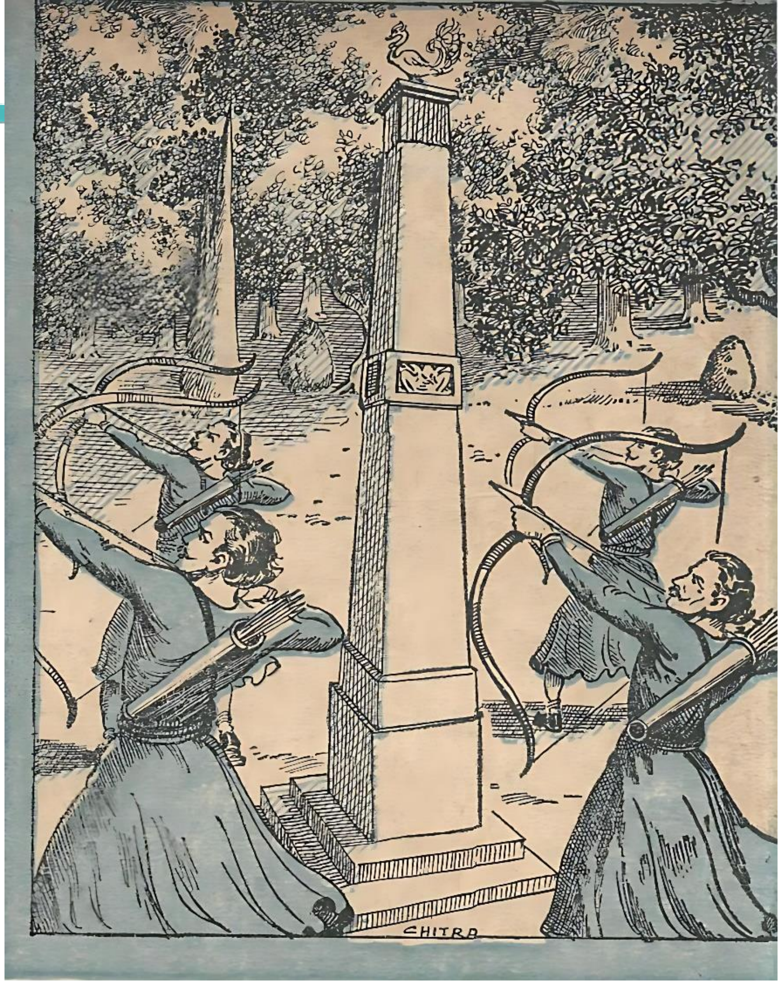


चाहता था कि सूर्य में कितनी शक्ति है। नहीं तो भला उसको शर्त की क्या ज़रूरत?

इसलिये वह थोड़ी देर इधर उधर उड़ता रहा, फिर आराम के लिये भूमि पर उतरकर काशी राज्य पहुँच गया। काशी राजा तो उसकी बाट जोह ही रहे थे, उसको देखते ही वे निहाल हो गये।

उसने राजहंस को अपने सुवर्ण सिंहासन पर बिठाया। सोने की थाली में खीर, और सोने के कलश में शरबत रखकर उसके सामने परोसा। थकान जब ज़रा कम हुई तो राजा ने उससे हाल-चाल पूछना शुरू किया। राजहँस ने सारी बात एक सिरे से दूसरे सिरे तक कह सुनाई।

सब कुछ सुनकर काशीराजा ने कहा-"पक्षीराज। सूर्य से ही आपने शर्त जीती। आपकी शक्ति को देखने के लिये मैं भी बहुत उत्सुक हो रहा हूँ।" राजहँस ने भी अपनी शक्ति दिखाने के उद्देश्य से उससे कहा-"राजा! अगर तेरे राज्य में विद्युत के समान बाण छोड़नेवाले तीरन्दाज़ हो तो उनमें से चार को यहाँ बुला।" राजा ने उन्हें बुला भेजा। बागीचे में एक चौकोर स्तम्भ था।



चार तीरन्दाज़ उस स्तम्भ के चारों ओर धनुष-बाण लेकर खड़े कर दिये गये। यह राजहंस की आज्ञा थी।

बाद में राजहंस अपने गले में एक घण्टी बाँध स्तम्भ पर जाकर बैठा गया।

"मेरे इशारा करते ही तुम चारों बाण छोड़ देना। मैं उड़कर तुम चारों के अलग अलग बाण तुम्हारे सामने लाकर रख दूँगा। परन्तु मेरे गले में बँधी घण्टी का शब्द सुनते ही तुम मेरी गति जान सकोगे, अन्यथा मुझे आँखों से देख लेना सम्भव नहीं है।" राजहंस ने कहा। अपने कहे के अनुसार, तीरन्दाज़ों का

बाण छोड़ना था कि उसने उन्हें उड़कर पकड़ लिया और उनके सामने रख दिया। बाण अपने निशाने तक पहुँच भी न पाये।

राजा और उसके दरबारी आश्चर्य से हक्के बक्के रह गये। "राजा! देखा तुमने? मैं कितनी तेज़ी से उड़ता हूँ? अलावा इसके, यह तो तब की बात है, जबकि मैं बहुत धीमे उड़ा था। इसको देखकर क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि मेरी अपनी गति वाकई कितनी तेज़ होगी?"

हड़बड़ाते हुये राजा ने कहा- "आपकी चाल कितनी तेज़ है, यह तो हमने स्वयं देख लिया है। क्या संसार में कोई ऐसा भी है, जिसकी चाल आप से अधिक तेज़ हो?"

तब राजहँस ने कहा-"मैं चाहे कितनी तेज़ी से भी उड़ूँ, पर एक ऐसी महाशक्ति है, जो मुझसे भी हज़ारों गुना अधिक तेज़ भागती है। वह है, 'काल'। यह काल सर्प, प्रति क्षण, इस संसार के जीवों का, प्रचण्ड वेग से नाश कर रहा है।" राजहंस का यह कहना था कि काशी राजा डर के मारे थर थर काँपने लगा। तब राजहँस का रूप धरे हुये बोधिसत्व राजा को इस प्रकार उपदेश दिया-"राजा! उनको डरने की ज़रूरत नहीं, जो यह जानते हैं कि काल सर्प नाम की कोई चीज़ है। जब तक तू धर्म और नीति के मार्ग पर चलते हुये राज्य का परिपालन करता है, तबतक तुझे कोई डर नहीं होना चाहिये। इसलिये तू अपना कर्तव्य भली भाँति निभा।"

बोधिसत्व के उपदेश के अनुसार राज्य का परिपालन कर काशी राजा ने यश प्राप्त किया।





ब्याघ्रदत्त जान गया कि कहाँ समरसेन और उसके सैनिक छुपे हुये थे। पर उसको यह सन्देह हुआ कि खण्डहर के खम्भों के पीछे छुपे लोग शिवदत्त व उसके अनुचर भी हो सकते हैं। जो कोई भी हो, व्याघ्रदत्त ने सोचा-"उनको पकड़ लेना ही अच्छा है।" समरसेन भी आनेवाले खतरे के बारे में खबरदार हो गया। उसने निश्चय कर लिया था कि अपने छह सैनिकों के साथ व्याघ्रदत्त का मुक़ाबला करना आत्म-हत्या के बराबर है। उस हालत में उसके लिये जल्द से जल्द वहाँ से कहीं और भाग जाना ही उचित था।

व्याघ्रदत्त के सैनिक ज़ोर से चिल्लाते हुये उस खण्डहर की ओर लपके, जहाँ समरसेन छुपा हुआ था। समरसेन भी अपनी तरफ़ सैनिकों को आते देखकर वहाँ से जल्दी जल्दी भागने लगा।



छः सैनिक और समरसेन एक तरफ़ थे और दूसरी तरफ बीस सैनिक और उनका सरदार व्याघ्रदत्त थे। उनके शोर-शरावे से आसपास का सारा इलाका गूँज रहा था। तहलका मचा हुआ था।

खण्डहर के कमरों में से, खम्भों के पीछे से, दीवारों की आड़ में से समरसेन और उसके सैनिकों ने भागना चाहा। परन्तु व्याघ्रदत्त ने अपने सैनिकों को दो टोलियों में बाँटकर उनको घेर लेने का प्रयत्न किया।

खम्भों के पीछे से, दीवार लांघकर जो व्याघ्रदत्त के सैनिक आगे आ गये थे, समरसेन और उसके सैनिक उनका मुकाबला करने लगे। समरसेन ने सोचा-"जब तक व्याघ्रदत्त के पाँच-छः सैनिक न मारे जायँ, उनके लिये वहाँ से भाग जाना असम्भव था।"

व्याघ्रदत्त ने अपने सैनिकों का हौसला बढ़ाया और स्वयं समरसेन से लड़ने के लिये आगे बढ़ा। तब तक व्याघ्रदत्त के चार-पाँच सैनिक समरसेन की तलवार के शिकार हो चुके थे।

चाहे जिधर भी देखो, चारों ओर जख्मी सिपाही पड़े हुये थे, और हाय हाय कर रहे थे। वह सारा स्थान भयङ्कर लग रहा था। ऐसी हालत में व्याघ्रदत्त ने आगे कूदकर समरसेन पर हमला किया।

दोनों बलवान और साहसी थे। उन दोनों में तलवार से घमासान युद्ध होने लगा। उनके पैरों की चोट से और तलवारों की प्रतिध्वनि के कारण टूटी-फूटी दीवारें हिल-हिलाकर गिरने लगीं। गिरते हुये खम्भों से और दीवारों से बचते हुये वे आपस में भयङ्कर युद्ध करते जाते थे।

व्याघ्रदत्त, थोड़ी देर युद्ध करने के बाद थक गया। यह देख, समरसेन

अपने सारे बल और चतुरता के साथ व्याघ्रदत्त को मारने के लिये पैंतरा लगाने लगा।

इस बीच में, व्याघ्रदत्त के सैनिक, जो संख्या में दुगने-तिगुने तो थे ही, उन्होंने समरसेन के सैनिकों को पकड़ लिया। सैनिकों में से दो-तीन बुरी तरह घायल हो गये थे। व्याघ्रदत्त के सैनिक तब अपने सरदार की मदद के लिये दौड़े। शोर न आता देख, अपनी सैनिकों की ललकार की ध्वनि न सुन, समरसेन ने अनुमान कर लिया कि या तो वे मारे गये हैं, नहीं तो पकड़े गये हैं। अब, जल्दी से जल्दी व्याघ्रदत्त का खातमा कर, वहाँ से भाग जाने की समरसेन सोचने लगा।

अतः समरसेन दुगने उत्साह और जोश से व्याघ्रदत्त पर हमला करने लगा। कहीं ऐसा न हो कि व्याघ्रदत्त के सैनिक उसको पीछे से पकड़ लें, वह दीवार के सामने खड़े हो लड़ने लगा। परन्तु उसको यह न मालूम था कि दीवार कमज़ोर हो चुकी थी और गिरनेवाली थी। मगर व्याघ्रदत्त ने यह मालूम कर लिया था।

यकायक व्याघ्रदत्त के सैनिकों की कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। समरसेन के





सैनिकों को पकड़ने के बाद, वे एक साथ, सरदार की मदद करने के लिये आगे बढ़ रहे थे। यह देख समरसेन ने ज़ोर से व्याघ्रदत्त पर तलवार चलाई और दीवार पर से कूद जाना चाहा।

ज्योंही समरसेन ने दीवार लांघनी चाही, दीवार तो पहिले से ही कमज़ोर थी, उसके कूदते ही वह धड़ाम से नीचे गिर गई, और समरसेन परली तरफ पत्थरों में जा पड़ा।

व्याघ्रदत्त को अच्छा मौका मिला। वह ललकारकर उस पर कूदा। इतने में उसके सैनिक आ गये, और उन्होंने समरसेन के हाथ-पैर जबरदस्ती पकड़ लिये। उसको हिलने न दिया।

व्याघ्रदत्त के हुकम पर समरसेन के हाथ-पैर रस्सी से बाँध दिये गये। उसकी तलवार को व्याघ्रदत्त ने ले लिया।

दुश्मन के पकड़े जाने पर व्याघ्रदत्त फूला न समाया। वह ज़ोर से हँसने लगा। उसके हँसने में निर्दयता और क्रूरता थी।

"आख़िर, कुछ भी हो, तू मेरे हाथ में आ ही गया। अगर तू पहले पहले जब मेरे हाथ में आया था, तब मुझसे दोस्ती कर लेता तो अब तेरी यह बुरी हालत न होती। शाक्तेय का अपूर्व शक्तिवाला त्रिशूल कहाँ है, मुझे मालूम है। पर तू बुरी मौत से न बच सकेगा।" व्याघ्रदत्त ने कहा।

व्याघ्रदत्त की बातें सुनकर समरसेन घबराया नहीं। अगर उसके लिये मृत्यु अनिवार्य थी, तो वह तैयार ही था। उसे अपनी चिन्ता न थी। वह तो मन ही मन उन सैनिकों के बारे में सोच रहा था, जो उस पर भरोसा कर हर कष्ट को झेल रहे थे। कभी कभी उसको यह भी सन्देह होता कि कहीं ऐसा तो न हुआ कि सरदार



के नाते उसने उन्हें गलत हुक्म दिया हो? वह अपनी ही परीक्षा करने लगा। इस कारण ऐसा लगता था, जैसे उसने व्याघ्रदत्त की बात सुनी ही न हो।

परन्तु व्याघ्रदत्त ने समरसेन की चुप्पी का दूसरा मतलब लिया। निश्चिन्त, निर्भय समरसेन को देखकर व्याघ्रदत्त घबराने लगा। वह सोचने लगा-"किसकी सहायता की उम्मीद में यह इतना निर्भय होकर खड़ा है?"

"इस बुरी हालत में तेरी मदद करने वाला यहाँ कोई नहीं है। यह बात तू अच्छी तरह जान ले। समझे ?" व्याघ्रदत्त ने कहा। वह सोच रहा था कि ऐसा कहने पर समरसेन उस व्यक्ति का नाम बता देगा, जो उसकी सहायता कर सकता था।

परन्तु तीक्ष्ण बुद्धिवाला समरसेन व्याघ्रदत्त की घबराहट और चिन्ता को ताड़ गया था। इसलिये उसने सोचा कि थोड़ा और उसे डरा कर देखा जाय। हो सकता है, फायदा ही हो।

"तू भी यह अच्छी तरह जान ले कि शाक्तेय का त्रिशूल कहाँ रखा हुआ है, यह जानने वाला तू अकेला ही नहीं है। सिर्फ़ जानने से कुछ फ़ायदा नहीं है।" समरसेन ने कहा।

यह सुन व्याघ्रदत्त हक्काबक्का रह गया। शाक्तेय का त्रिशूल, नगर के खण्डहरों में हाथियोंवाले जङ्गल में है, यह शिवदत्त को मालूम था। और जब वह अपने सैनिकों को इस बारे में कह रहा था, तो समरसेन ने भी छुपकर सुन लिया होगा।

"मुझे मालूम है कि तू ने आड़ में खड़े होकर यह सुन लिया है कि त्रिशूल कहाँ रखा हुआ है। शिवदत्त को भी वह जगह मालूम है। पर न तु म ही मुझे रोक सकते



हो, न वह ही। उस हालत में कौन ऐसा है, जो मुझे दिव्य शक्तिवाले त्रिशूल को लेने से रोक सकता है?" व्याघ्रदत्त ने पूछा।

समरसेन उस प्रश्न का बिना जवाब दिये मुस्कुराता खड़ा रहा। समरसेन चाहता था कि इस तरह व्याघ्रदत्त के मन में और भी घबराहट पैदा कर दे। समरसेन ने यह भी देखा कि व्याघ्रदत्त का मुँह पीला पड़ गया था। वह कराहने लगा था।

"दो ऐसे व्यक्ति हैं, जो तेरे हाथ में त्रिशूल जाने से रोक सकते हैं। उनमें से तू सिर्फ़ अबतक एक को ही पकड़ पाया है। पर एक ऐसा व्यक्ति भी है, जो तेरे त्रिशूल लेने से पहले तेरा काम तमाम कर सकता है। वह मेरा मित्र है। उसकी आज्ञा पालन करने के लिये ही मैं तेरे व्याघ्रमण्डल में घुसा था। समझे?" समरसेन ने कहा।

व्याघ्रदत्त यह सुन और भी अधिक घबरा गया। वह सोचने लगा कि काम उतना आसान न था जितना कि वह सोच रहा था।

"वह कौन है, जो मुझे रोक सकता है?" व्याघ्रदत्त ने पूछा।



"चतुर्नेत्र" समरसेन ने ज़ोर से जवाब दिया।

"चतुर्नेत्र" शब्द ने केवल व्याघ्रदत्त में ही नहीं, परन्तु उसके सैनिकों में भी कँपकँपी पैदा कर दी। सैनिक डर के मारे अपने सरदार की ओर ताकने लगे। यह देख व्याघ्रदत्त ने साहस और बहादुरी का ढोङ्ग किया, यद्यपि वह अन्दर ही अन्दर डर रहा था। परन्तु उसने कहा-"अच्छा, तो इसका मतलब यह हुआ कि तू उसको जानता है?" व्याघ्रदत्त यह कह हँसने लगा। "उसकी आज्ञा पर ही यहाँ मैं आया हूँ। यह बात तू अच्छी तरह ख्याल रख।" समरसेन ने कहा।

व्याघ्रदत्त डर के मारे काँप गया। उसने चतुर्नेत्र, और उसकी शक्ति और चतुरता के बारे में सुन रखा था।

व्याघ्रदत्त अभी सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि उसे दूरी पर सैनिकों का कोलाहल सुनाई दिया। इतने मैं एक सैनिक ने उसके पास आकर डरते हुये कहा-"हुजूर, हुजूर, शिवदत्त अपने अनुचरों के साथ नगर के खण्डहरों में प्रवेश कर रहा है।"

व्याघ्रदत्त को लगा, जैसे उस पर बिजली गिर पड़ी हो। अपने थोड़े सैनिकों के साथ शिवदत्त को मुकाबला करने का तो सवाल ही नहीं उठता था, सिवाय वहाँ से भाग निकलने के, उसके सामने कोई रास्ता न था। परन्तु समरसेन का क्या किया जाय ? उसने एक क्षण तो यह सोचा कि उसका काम तमाम का दिया जाय; पर वह काम खतरे से खाली न जान वह डरने लगा। क्योंकि अपने दोस्त के मारे जाने पर, हो सकता है, चतुर्नेत्र सारे व्याघ्रमण्डल का ही नाश कर दे।

"समरसेन ! इतना सब कुछ हो जाने बाद, हम दोनों का इसी में भला है कि हम मित्र हो जाएँ। मैत्री की क्या शर्तें हो, इस पर फुरसत से बातचीत कर सकते हैं। अब चलो, हम एक सुरक्षित स्थान पर जल्दी भाग जायँ।" व्याघ्रदत्त ने कहा।

बाद में, बेहथियार समरसेन को साथ लेकर व्याघ्रदत्त और उसके दो सैनिक वहाँ से भागने लगे। भागते हुये उनको शिवदत्त और उसके अनुचरों और व्याघ्रदत्त के बाकी सैनिकों के लड़ने की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

(अभी और है)





बहुत समय पहिले रूस में एक किसान के तीन लड़के थे। उनमें से सबसे छोटे का नाम इवान था। वह कुछ पागल-सा था। इस वज़ह से उसकी माँ उसे कोई भी काम न देती थी। भाई बड़े हुये और अपना काम-धन्धा करने लगे। माँ ने इवान को अपने पास रखना चाहा।

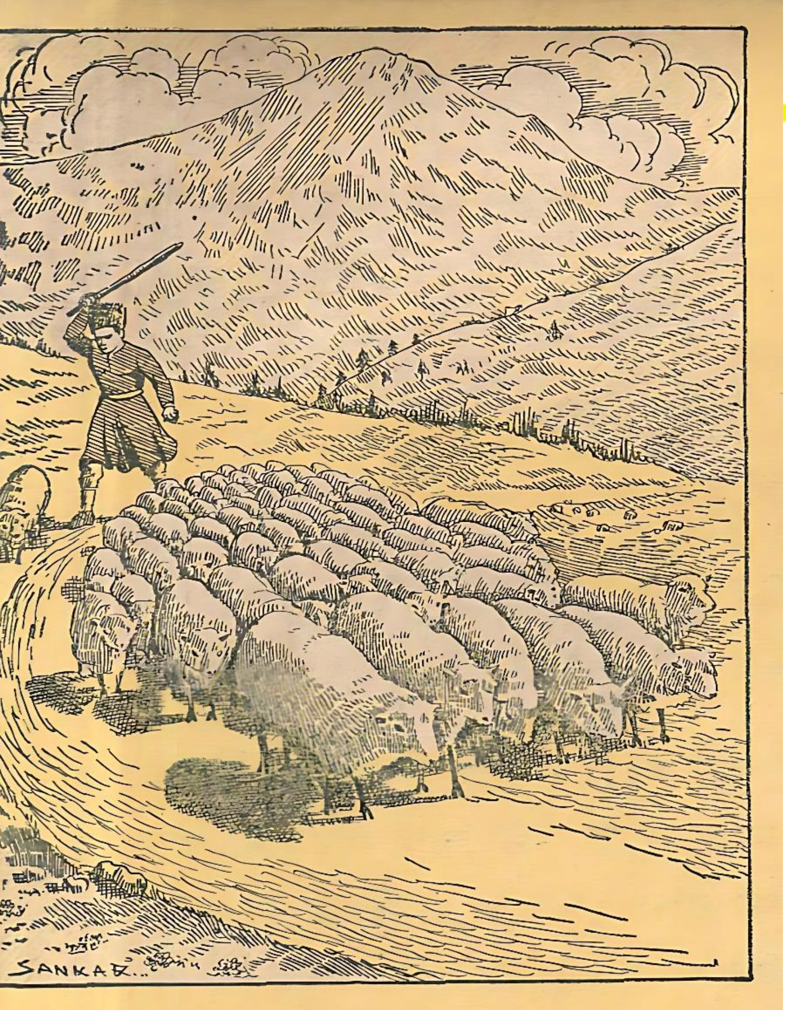
एक दिन सबेरे बड़े भाई भेड़-बकरियों को चारागाह में चराने के लिये ले गये। माँ ने उनके लिये रोटियाँ बनाकर एक कटोरी में रखते हुये इवान से कहा-"जा, उन्हें ले जाकर भाइयों को दे आ।" इवान कटोरी सिर पर रखकर चल दिया। कुछ दूर जाने के बाद उसने मुड़कर जो देखा तो उसको अपनी छाया दिखाई दी। वह चलता तो वह भी चलती, वह रुकता तो वह भी रुकती।

"अरे! तू कौन है? क्यों मेरे पीछे लगी हुई है?" इवान ने अपनी छाया पर गुस्सा किया। परन्तु छाया ने कोई जवाब न दिया। वह पीछे चलती जाती थी।

"ओहो, क्या तू जान गई है कि कटोरी में रोटियाँ हैं? तो, ले यह एक, भाग।" कहकर उसने कटोरी में से एक रोटी निकाली, छाया पर डालकर आगे बढ़ चला।

परन्तु छाया साथ चलती जाती थी। इवान ने एक और रोटी निकालकर छाया के सिर पर दे मारी। छाया तब भी चलती गई। इवान ने एक और रोटी उसके सामने फेंकी। आखिर वह आग बबूला हो उठा, और कटोरी को छाया पर मारते हुये उसने कहा-"जा मर।" वह खाली हाथ भाइयों के पास पहुँचा।

श्री श्याम चरण 'मस्त'



"क्यों आया है?" भाइयों ने पूछा।

"मैं तुम्हारे लिये खाना लाया हूँ।"

"कहाँ है?" भाइयों ने पूछा।

"माँ ने रोटी बनाकर दी थी। यह चुड़ैल मेरे पीछे पड़ गई। मैने इसके मुख पर एक एक कर सब रोटियाँ फेंक दीं। यह सारी रोटियाँ खाकर भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रही है। चाहो तो देख लो।" इवान ने अपनी छाया दिखाते हुये कहा।

दोनों भाइयों ने गुस्से में छोटे भाई की खूब मरम्मत की। माँ की भेजी हुई रोटी तो फेंक दी गई थी, इसलिये उन्होंने गाँव में जाकर खाना खाने की ठानी।

"हम अभी खाना खाकर आते हैं। तब तक भेड़ों की रखवाली कर। तुझे कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। मगर इतना ख्याल रखना कि वे तितर-बितर न हो जायें।" दोनों भाई यह कहकर चले गये।

भाइयों के चले जाने के बाद इवान ने भेड़ों के झुण्ड को एक जगह रखने की बहुत कोशिश की। पर उन्होंने चरते चरते इधर उधर जाना शुरू कर दिया। इवान ने एक भारी लठ्ठ लिया, और उन भेड़ों की टाँगें तोड़ डालीं, जो दूर चली गई थीं।

भाइयों ने वापिस आकर देखा कि कई भेड़ों की टाँगे टूटी हुई हैं। उन्होंने इवान को खूब पीटा और घर भेज दिया। तब से इवान को उसकी माँ ने कोई काम न दिया। बहुत दिन गुज़र गये। इवान बड़ा हो गया। उसके माँ-बाप भी गुज़र गये थे। परन्तु इवान की बुद्धि न बदली; यानी वह मूर्ख ही रहा।

"इवान किसी काम का नहीं है। उसे माँ ने लाड़-प्यार कर बिगाड़ा है। उसको हम कब तक घर में बैठाकर खाना खिलायेंगे? अगर घर से अलग करते

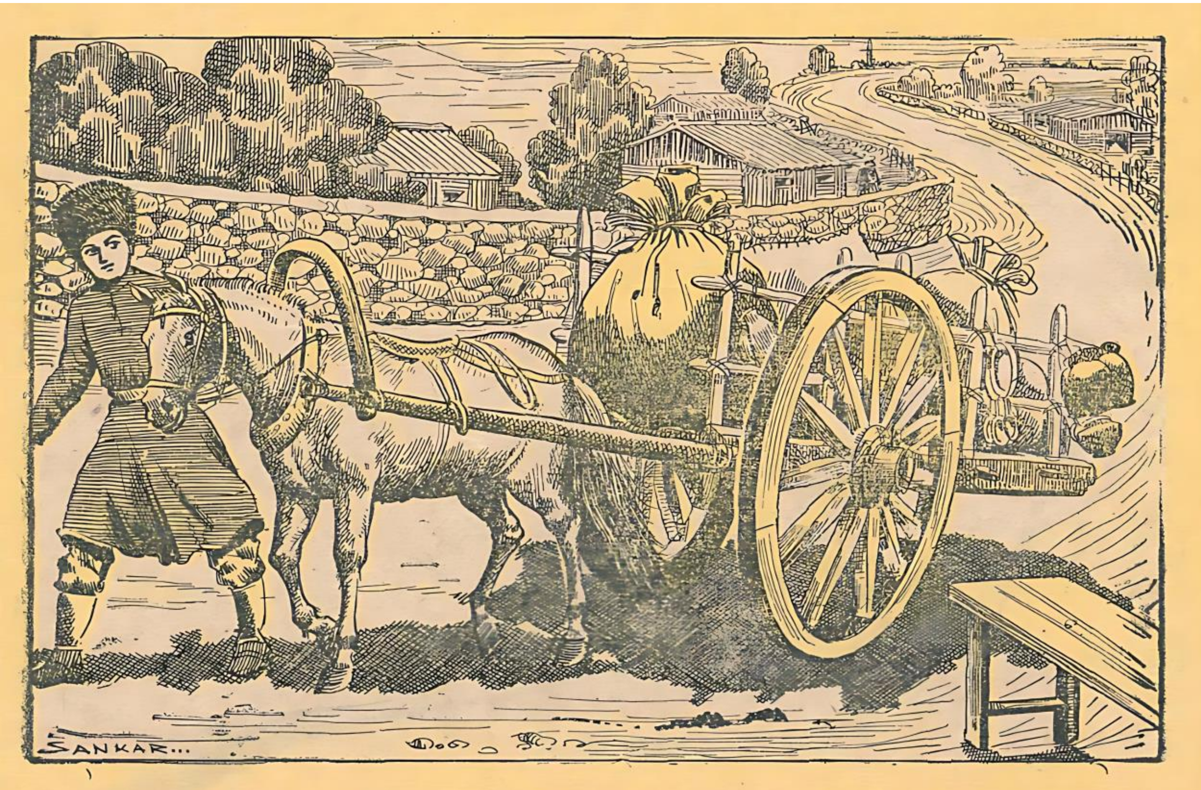
हैं, तो सब कोई हमारी ही बुराई करेगा। उसको किसी न किसी तरह कोई काम सिखाना चाहिये।" भाइयों ने सोचा।

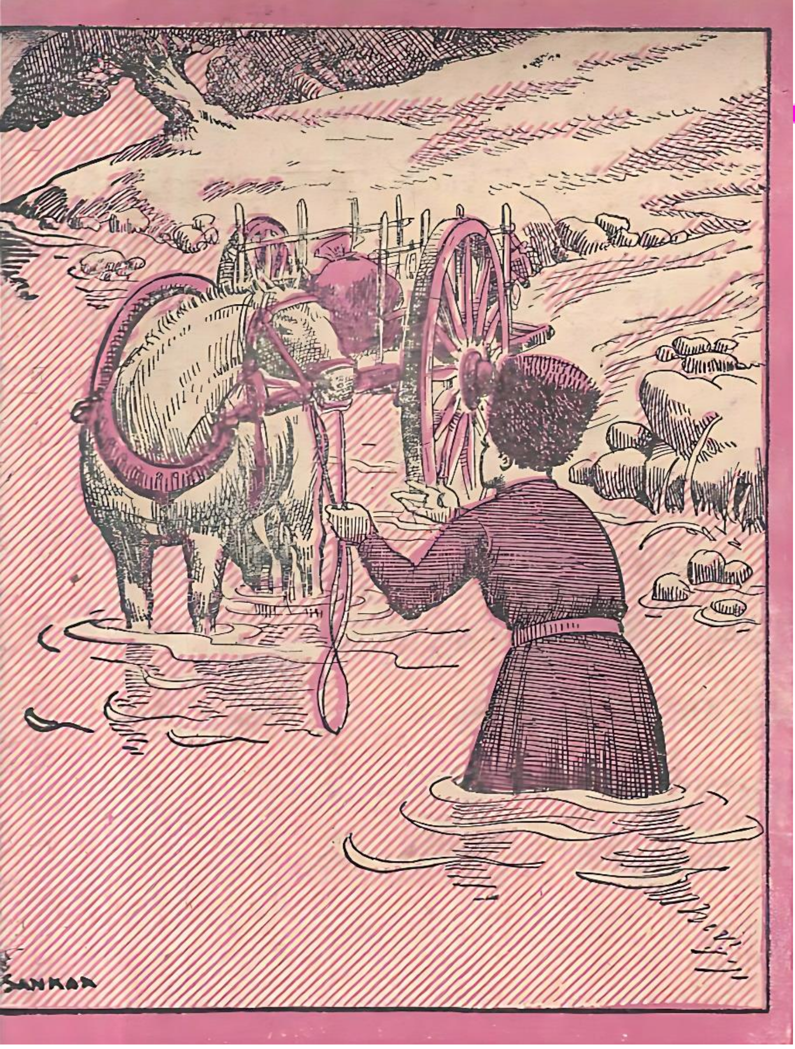
क्रिस्मस का त्योहार आनेवाला था। घर में कई चीजों की ज़रूरत थी। उन्होंने आवश्यक चीज़ों की एक फ़ेहरिश्त बनाई, और इवान से कहा कि वह शहर से गाड़ी में चीजें ले आये।

घोड़े की लगाम पकड़कर, गाड़ी पर चढ़ इवान जोश के साथ शहर की ओर चला। एक बोरी नमक, दाल, चावल, वगैरह, चार पैरोंवाली एक बेञ्च, कितने ही हण्डे-हण्ड़ियाँ, कप और सॉसर; थैले भर चम्मच गाड़ी में रख वह घर की ओर चला। परन्तु थोड़ी दूर जाने के बाद घोड़ा थककर धीमे धीमे चलने लगा।

"ओ हो! शायद भार अधिक हो गया है, इसीलिये घोड़ा धीमे धीमे चल रहा है। वह खींच नहीं पा रहा है। कुछ वज़न कम करना चाहिये।" यह सोच इवान ने गाड़ी में रखे समान की ओर नज़र दौड़ायी। उसे चार पैरोंवाली बेञ्च दिखाई दी।

"इसके भी घोड़े के समान चार पैर हैं। नीचे उतार दूँगा तो खुद चलेगी। इसे भी





क्या सवारी चाहिये?" इवान ने बेञ्च नीचे रखके कहा-"चल, घर की तरफ़।" और गाड़ी हाँकने लगा।

कुछ दूर जाने के बाद, गाड़ी के पीछे कौवे काँय काँय करने लगे। उन्हें गाड़ी में खाने की चीजें दिखाई दे रही थीं। "अरे! अरे! लगता है, इन कौवों को भूख लग रही है।" इवान ने सोचा और गाड़ी में से कप और सॉसर निकाल, उनमें दाल-चावल रख, कौवों को बुलाकर कहा- "खाओ, खूब पेट भर खाओ।" फिर वह आगे बढ़ा।

कुछ दूर और जाने पर एक जङ्गल आया। रास्ते के बगल में उसे जले हुये पेड़ों के ठूँठ दिखाई दिये।

इन ठूँठों पर टोपियाँ नहीं हैं। रात में न जाने सरदी के मारे ये कितनी तकलीफ़ उठाते होंगे।" यह सोच उसने गाड़ी में से हँड़े निकाले और उन पर उल्टा करके रख दिये।

फिर एक नाला आया। इवान ने पानी पिया। उसने घोड़े को भी पानी पिलाना चाहा। उसने बड़ी जबरदस्ती की, पर घोड़े ने पानी छुआ तक नहीं।

"क्योंकि पानी में कोई स्वाद नहीं है, इसीलिये शायद घोड़ा पानी नहीं पी रहा है।" यह सोचकर इवान ने नाले में बोरी भर नमक उड़ेल दी। "पी, अब पी।" उसने घोड़े से कहा। जब घोड़े ने पानी न छुआ तो इवान उबल उठा।

तेरे लिये सारा नमक पानी में डाल दिया। तब भी तू क्यों नहीं पीता है? तुझे इतना घमण्ड?" उसने गुस्से में घोड़े के सिर पर अपने मोटे लट्ठ से दो जमाये। घोड़ा वहीं ठण्डा हो गया।

अब घर ले जाने के लिये ऐसा खास समान बाकी नहीं रह गया था। चम्मचों,

की थैली उसने कन्धे पर रखी और चल दिया। जब वह एक कदम उठाकर दूसरा रखता तो थैली में आवाज़ होती। उसे ऐसा लगता, जैसे आवाज़ कह रही हो-"पागल इवान, पागल इवान।"

इवान को गुस्सा आ गया। उसने थैली नीचे पटकी और पैर से कुचलते हुये कोसने लगा-"मरो, हो तुम्हारा सत्यानाश!" वह खाली हाथ घर पहुँचा।

"गाड़ी कहाँ है?" भाइयों ने पूछा।

इवान ने सब कुछ सुनाया। भाइयों के गुस्से की हद न थी। "जा मूर्ख! कम से कम पेड़ पर रखे हण्डे-हण्ड़ियाँ, कप-सॉसर तो बटोर ला। नहीं तो तेरा काम तमाम कर देंगे।" भाइयों ने धमकाया।

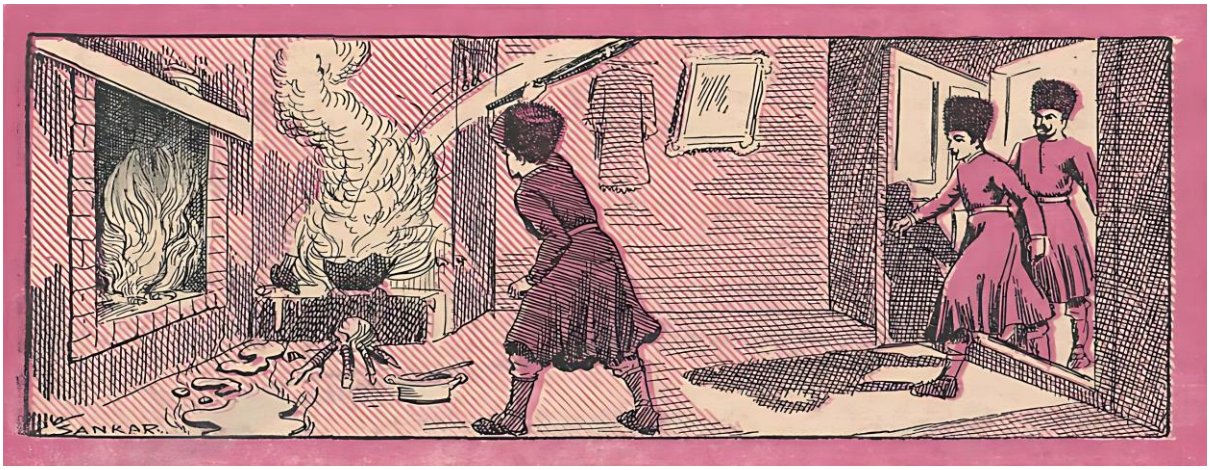
इवान फिर वापिस दौड़ा। उसने हण्डे-हण्ड़ियाँ, कप-सॉसरों में छिद्र किया, और उसमें से एक धागा निकालकर, उन्हें पीठ पर लादकर घर ले आया।

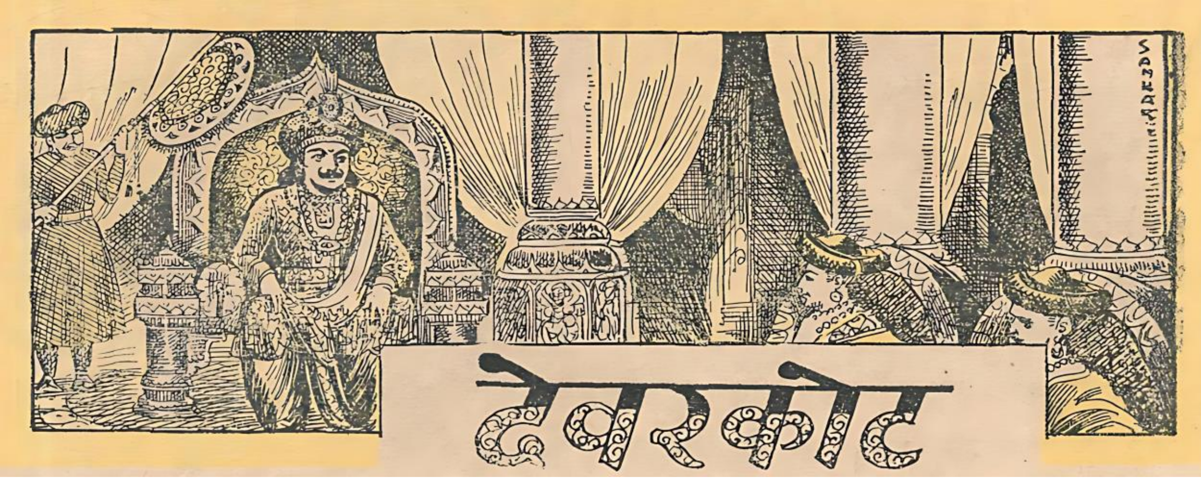
भाई गुस्सा न रोक सके। उन्होंने इवान की चटनी बना दी। वे स्वयं त्योहार के लिये ज़रूरी चीजें खरीदने निकले। इवान रोता-पीटना घर में बैठा रहा। थोड़ी देर में उसे लगा कि कोई उसे देखकर हँस रहा है। जब जाकर देखा तो रसोई में, चूल्हे पर चावल उबल रहे थे।

"अरे ठहर भी। तू भी मुझे चिढ़ाता है।" इवान ने कहा।

हण्ड़िया में शब्द और अधिक हो गया। इवान को गुस्सा आया। लट्ठ से हण्ड़ी पर एक चोट मारी। हण्ड़ी टूट गई। जब भाई घर आये तो खाने के लिये भात भी न था।

भाइयों ने समझ लिया कि वह सचमुच पागल है, उसे सुधारना असम्भव है। लाचार हो, उसका पालन-पोषण करने लगे।





कृष्णदेवराय के दरबार में बड़े कवि और पण्डित रहा करते थे। यह चार सौ साल पहले की बात है।

एक बार पण्डितों को एक सन्देह हुआ। वह सन्देह था-"युधिष्ठिर के भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव चार भाई थे। श्री रामचन्द्र के लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तीन भाई थे। युधिष्ठिर के भाइयों ने उसके प्रति कितनी ही भक्ति और श्रद्धा दिखाई। उसके साथ वे भी जङ्गलों में गये। अज्ञातवास भोगा। श्री रामचन्द्र के भाइयों ने भी उनके प्रति अत्यधिक आदर-सम्मान दिखाया। लक्ष्मण ने चौदह साल तक भाई के साथ बनवास भुगता, रात-दिन उनकी रक्षा करता रहा, एक क्षण भी आँख न मींची। भरत ने कोसल का राजा होने पर भी, सिंहासन पर भाई की खड़ाऊँ रखीं, पर स्वयं कभी न बैठा। अब समस्या यह थी कि युधिष्ठिर के भाई अधिक श्रद्धालु थे, या राम के भाई?"

दरबार में कई ने युधिष्ठिर के भाइयों का पक्ष लिया, तो कई ने राम के भाइयों का समर्थन किया। पर वाद-विवाद समाप्त न हुआ। आखिर पण्डितों ने कृष्णदेवराय से निर्णय देने के लिये कहा। उन्होंने इस प्रकार निर्णय दिया-"श्री रामचन्द्र के भाई किसी तरह से उनसे अधिक समर्थ न थे। हर बात के लिये उन पर वे आधारित थे। पर युधिष्टिर के भाइयों के बारे में ऐसी बात न थी, वे कई बातों में बड़े भाई से बढ़-चढ़कर थे। तब भी उन्होंने भाई के लिये सब कुछ बलिदान किया। इस कारण युधिष्टिर के भाइयों की भक्ति श्रद्धा अधिक थी।"

श्री य. अर्जुनराव

यह सुन पंडित खुश हुये। परन्तु चामर हिलानेवाले धोबी ने कहा- "इस जन्म में भी देवराय पाण्डबों का पक्षपात कर रहे हैं।" उसका मतलब था कि राजा कृष्ण देवराय श्री कृष्ण के अवतार थे।

राजा को धोबी की बात सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने मन्त्री तिम्मरुसू को बुलाकर कहा- "धोबी को जो चाहिये, वह दिलवा दीजिये।"

तुरन्त धोबी ने कहा-"मुझे 'देवरकोट' (तेलुगु शब्द, जिसका अर्थ है कृष्णदेवराय का किला) दिलवा दीजिये।"

तिम्मरुसू चकित रह गया। धोबी को अलग ले जाकर कहा-"कुछ और माँग ले, ज़रूर दिलवा दूँगा।"

धोबी ने सविनय कहा-"मुझे कुछ और नहीं चाहिये महाराज।"

कई दिन बीत गये। एक दिन कुछ लोग कृष्णा नदी के किनारे से दरबार में आये। तिम्मरुसू ने उनसे मालूम कर लिया कि वे "देवरकोट" नाम के गाँव से आये थे।

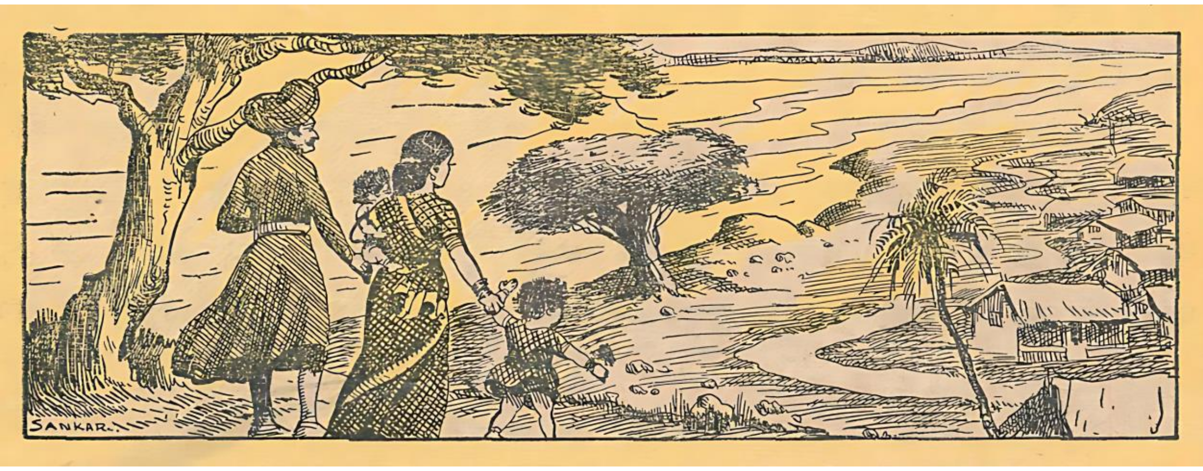
"देवरकोट कहाँ है?" तिम्मरुसू ने पूछा।

"कृष्णानदी के उत्तर में एक गाँव है।" उनमें से एक व्यक्ति ने कहा।

तुरन्त तिम्मरुसू ने धोबी को बुलाकर कहा-"अरे तुझे 'देवरकोट' दे दिया है। आज ही जा, कब्जा कर ले। वह कृष्णा-नदी के परले पार है।"

धोबी स्तब्ध रह गया। वह आशा बाँधे बैठा था कि राजा का किला उसे मिलेगा।

उसकी आशा निराशा ही नहीं हुई, बल्कि उसे दरबार में अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा।





सच्चाई

एक समय था, जब कि विदर्भ में बहुत चोरियाँ और डकैतियाँ हुआ करती थीं। उस देश का राजा नवयुवक था। राज्य में यह अशान्ति देख उसे बड़ा दुःख होता था। होने को तो सिपाही, सैनिक, कर्मचारी, कोतवाल, जल्लाद, वगैरह सब थे। पर वे चोरों को नहीं पकड़ पाते थे।

राजा ने सोचा, अगर चोरों को कड़ी सज़ा दी गई, तो हो सकता है कि चोरियाँ कम हो जायें। राजा ने हुक्म दिया कि जो कोई चोर पकड़ा जाय, उसका सिर काट दिया जाय। छोटी-छोटी चोरी करनेवालों का भी सिर काट दिया गया।

परन्तु चोरीयाँ कम होने के बजाय और अधिक होने लगीं। आखिर बात क्या है, यह जानने के लिये राजा परदेशी का वेष धर आधी रात राजधानी से निकल पड़ा और सबेरे होते होते दस मील दूर एक गाँव में पहुँचा। जब राजा चौराहे के पास पहुँचा तो गाँव के बड़े-बुजुर्ग वहाँ दिखाई दिये। वहाँ जाकर उसने कहा-"आपके देश में, सुनते हैं, चोरियाँ बहुत अधिक हो रही हैं। न जाने, आप कैसे जी रहे हैं?"

"जिनके पास पैसा है, उन्हीं को डर होगा। भला हमें क्या डर? इन सरकारी कर्मचारियों ने तो हमें कभी का लूट रखा है।" उनमें से एक बूढ़े ने बताया।

"रोज़ चोरियाँ होती हैं, पर एक भी चोर नहीं पकड़ा जाता। यहाँ के चोर तो बहुत चालाक नज़र आते हैं।" राजा ने कहा।

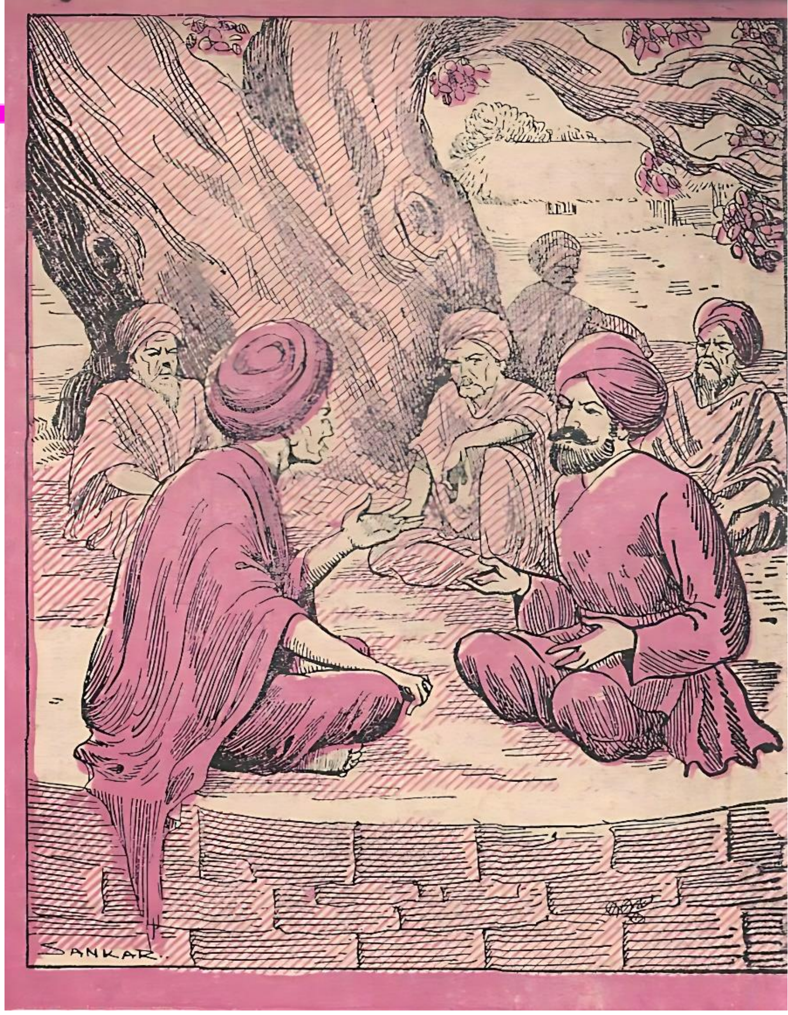
"बड़े बड़े चोरों की सरकार रक्षा करती है और छोटे छोटे चोरों की जनता मदद करती है। चोरों के न पकड़े जाने के कारण इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं हैं।"

श्री शीतल प्रसाद

"छोटे चोरों को जनता क्यों बचाती है?" राजा ने पूछा।

"क्यों कि वे बड़े चोरों की तरह झूठे और बेईमान नहीं हैं। छोटे चोर सच्चे होते हैं।" बूढ़े ने कहा।

राजा वहाँ से एक और गाँव में गया। उसने एक बेकार व्यक्ति से पूछा- "बाबू! मैं परदेशी हूँ। मैं इस देश में सच्चाई से चोरी करके जीना चाहता हूँ। पर वह कला मैं नहीं जानता हूँ। क्या आप मेरी मदद कर सकेंगे?"



"पर तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं चोर हूँ?" उस आदमी ने पूछा।

"क्योंकि मैं भी एक चोर हूँ, इसलिये दूसरे चोर को पहचान लेता हूँ।" राजा ने कहा।

"शाबाश, अगर तूने सच्चाई और नेकी निभाई तो ज़रूर तरक्की करेगा।" चोर ने आशीर्वाद दिया।

"आप मुझे अपने साथ एक बार चोरी के लिये ले जाइये। बाद में अपना रास्ता मैं खुद देख लूँगा।"

"तो फिर चल, आज राजा के खज़ाने में सेँध डालें।" चोर ने कहा।

"वह तो खतरनाक काम है न? अच्छा होगा, अगर किसी छोटे-मोटे घर में चोरी करें।" राजा ने सुझाया।

"छी! तू तो कोई बड़ा चोर मालूम होता है। हम छोटे चोर हैं, इसलिये बड़े घरों में चोरी करते हैं।" चोर ने कहा।

अन्धेरा होते ही वे चल पड़े और आधी रात होते होते वे राजधानी में पहुँचे।

"बाबू! इस चोरी में मेरा कितना हिस्सा रहेगा?" राजा ने पूछा।

"दोनों का आधा आधा।" चोर ने कहा।

"परन्तु आपको तो मुझसे अधिक अनुभव है न? आपका अधिक लेना मुनासिब है न?" राजा ने पूछा।

"नहीं तो! अगर हम पकड़े गये तो दोनों को बराबर सजा मिलेगी। इसलिये चोरी का माल बराबर बाँट लेना ठीक है।" चोर ने कहा। चोर की ईमानदारी पर आश्चर्य करते हुये राजा ने पूछा-"क्या आपकी बात पर विश्वास किया जा सकता है?"

"मैं झूठ नहीं बोल सकता। झूठ को मैंने गुरु-दक्षिणा के रूप में दे दिया है।" चोर ने बताया।

चोर ख़ज़ाने में पहुँचा। कोई उसको देख न पाया। दोनों अन्दर गये।

एक सोने की पिटारी में तीन बड़े बड़े हीरे थे।

"तीन हीरों को तो हम बराबर बाँट नहीं सकते। इसलिये हम दो ले लें, और एक यहाँ छोड़ दें। अगर तूने यह हीरा बेच लिया, तो जिन्दगी आराम से कट जायेगी।" चोर ने कहा। उन्होंने और कुछ न लिया।

राजा चोर से इज़ाज़त ले अपने महल में चला आया।



सबेरे पहरेदारों ने ख़ज़ाने में सेँध देख कर मन्त्री को खबर दी। मन्त्री ने आकर देखा कि दो हीरे ही चोरी गये हैं। उसने चुपके से तीसरा हीरा अपनी जेब में डाल लिया और राजा से जाकर कहा कि तीन हीरे चोरी चले गये हैं।

राजा ने मन्त्री से कहा कि अगर फ़लाने गाँव में फ़लाने आदमी को पकड़कर लाया गया, तो चोरी पता लग जायेगी। सिपाही चोर को पकड़ लाये।

"महाराज ! मैंने और एक और चोर ने दो हीरे चुराकर आपस में बाँट लिये थे। तीसरे हीरे को तो हमने छूआ तक नहीं था। देखिये यह है वह हीरा।" कहते हुये चोर ने हीरा दे दिया।

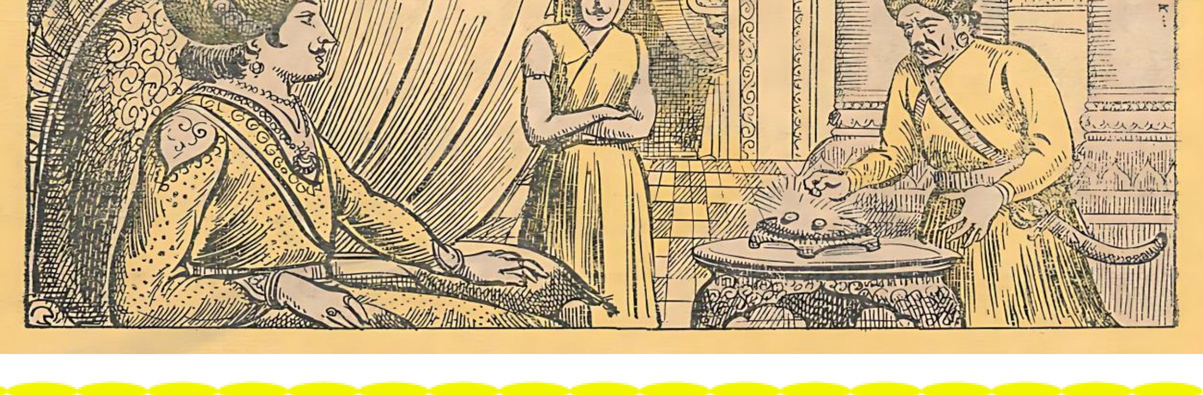
"इसी ने दो हीरे और कहीं रख दिये होंगे। इसको फाँसी पर चढ़वाइये।" मन्त्री ने सलाह दी।

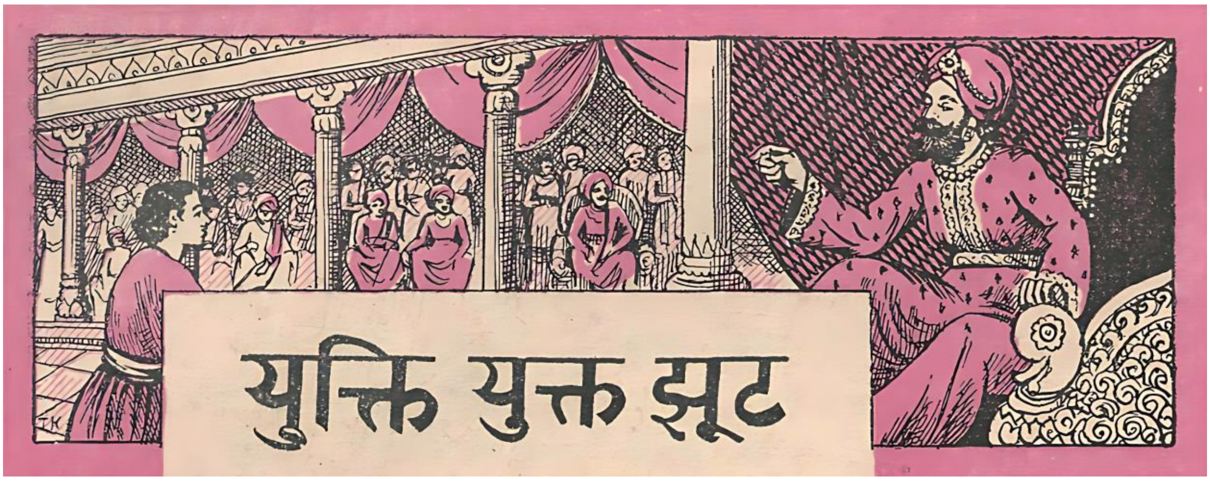
"दूसरे चोर को मैंने पकड़ लिया है। उसने भी अपना हीरा मुझे दे दिया है। और वह हीरा यह है।" राजा ने अपनी जेब में से हीरा बाहर निकाला।

"यानी तीसरे हीरा ले जानेवाले को पकड़ना है। मुझे एक महीने का समय दीजिये।" मन्त्री ने कहा।

"इस छोटी सी बात के लिये महीना भर चाहिये? शायद तीसरा हीरा आपकी जेब में ही हो।" राजा ने कहा।

मन्त्री ने काँपते हुये हाथों से जेब में से तीसरा हीरा बाहर निकाला। राजा ने मन्त्री को फाँसी दिलवाई। और उसके स्थान पर चोर को नियुक्त किया। उसकी नियुक्ति के कारण "बड़े" चोर सब बदल गये और धीरे धीरे "छोटे चोर" भी जाते रहे।





राजा यशोवर्धन काशी पर राज्य करता था। उन दिनों वहाँ का व्यापार बढ़ रहा था। आसपास के राज्यों में दूसरे धनवालों का शासन स्थापित हो रहा था। काशी के व्यापार के लिये तो यह ज़रूरी था कि दूसरे राज्यों से व्यापार सम्बन्धी समझौते किये जायें। समझौतों को निभाने के लिये एक चतुर दूत-दल का प्रबन्ध करना आवश्यक था। यथा अवसर झूठ बोलकर दूसरे व्यक्ति को द्विविधा में डालनेवाला ही दूत-कार्य कर सकता था, गला फाड़कर सच बोलने चाला नहीं।

दूत बनने लायक देश में कितने व्यक्ति हैं; यह जानने के लिये यशोवर्धन ने एक उपाय सोचा। उसने घोषित किया कि दरबारियों में झूठ बोलने की प्रतियोगिता होगी, और जो कोई सबसे अधिक युक्तियुक्त झूठ बोल सकेगा, उसको मैं अपनी लड़की और आधा राज्य दूँगा।

दरबारी चकित होकर एक दूसरे की तरफ देखने लगे। उनमें से कइयों ने राजा की लड़की के साथ आधा राज्य पाना चाहा।

एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा- "महाराज ! मैंने बचपन में एक ही साथ पूर्व में सूर्योदय और पश्चिम में चन्द्रोदय होते देखा है।"

"बचपन की वज़ह से पूर्व को पश्चिम और पश्चिम को पूर्व समझ लिया होगा। उसी तरह अस्त होने के समय को उदय होने का समय समझ लिया होगा।" राजा ने कहा।

एक और व्यक्ति ने कहा-"महाप्रभू ! हमारे शहर में कई लोग गर्मियों में,

श्री रा. राम दुडू

बरतनों में धूप इकट्ठा का लेते हैं और उससे बरसात में खाना पकाते हैं।"

"इस तरह शायद ईन्धन में बचत कर लेते होंगे।" राजा ने मुस्कुराते हुये कहा।

फिर एक और ने कहा-"महाराज! हमारे गाँव में कई सिर के बल चलते हैं। मुख से सुनते हैं। नाक से देखते हैं कान से खाते हैं।"

"उससे उनके जीवन में भला क्या परिवर्तन हुआ?" राजा ने पूछा। इस तरह कई झूठ बोले गये, पर वे सब निरर्थक थे। उनमें युक्ति एक में भी न थी। अगर ऐसे लोगों को काशी राज्य के बाहर दूत बनाकर भेजा जाता, तो काशी राज्य का परिहास ज़रूर होता।

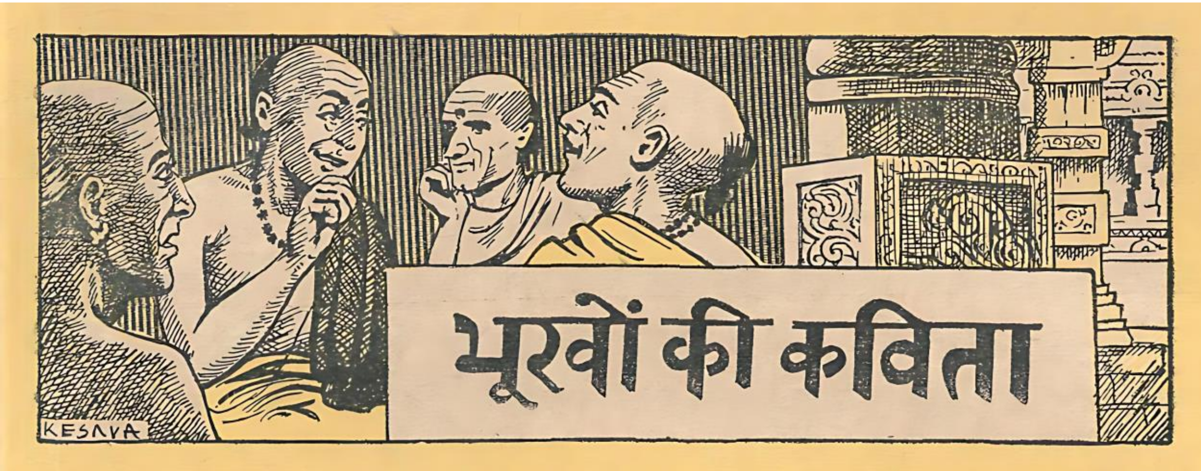
राजा अभी यह सोच ही रहा था कि एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा- "महाराज! आपने न केवल मेरी बपौती ही हड़पी, बल्कि ऐसे झूठ बोलनेवालों को मेरी सम्पत्ति बाँट भी रहे हैं। मैं यह कभी मञ्जूर न करूँगा।"

राजा चकरा गया। भरे दरबार में वह यह कह रहा था कि काशी राज्य उसकी बपौती थी। अगर यह बात सच है, तो इस व्यक्ति को सारा राज्य दे देना चाहिये। अगर झूठ है, तो मानना पड़ेगा कि उसने राजा को द्विविधा में डाल दिया था। यही युक्ति युक्त झूठ था।

राजा ने खड़े होकर कहा-"तुम्हारा झूठ सुनकर हमें बड़ी खुशी हुई। तुम्हें शीघ्र ही मैं आधा राज्य हूँगा, और अपनी लड़की की शादी भी तुमसे कर दूँगा।"

वह काशी राज्य का दामाद बन गया। उसने दौत्य-कार्य में भी बड़ी सफ़लता पाई।





राजा भोज कविता का बहुत शौकीन था। परन्तु कविता के प्रति उसका इतना पक्षपात था कि सिवाय कवियों के उसके दरबार में किसी और का आदर न होता था। यह नौबत आई कि बड़े बड़े पण्डित को भी भोजन के लाले पड़ने लगे। कुछ पण्डितों ने निश्चय किया कि जैसे तैसे वे एक श्लोक लिखेंगे, और ईनाम पाकर अपना पेट भरेंगे। क्योंकि राजा भोज के पास भिक्षा माँगने के लिये भी कविता की आवशकता थी। एक दिन वे ब्राह्मण धारा नगर के मुक्तेश्वर के मन्दिर में श्लोक लिखने के लिये बैठे। अगर आठ अक्षर प्रति पंक्ति के हिसाब से चार पंक्ति बनाई गईं, तो एक श्लोक हो जाता है; सिर्फ इतना ही उन्हें मालूम था। परन्तु वे श्लोक के लिये भाव नहीं सोच पाये। उनको एक ही समस्या सता रही थी, और वह समस्या थी भूख की।

एक ब्राह्मण ने कहा कि लिखें- "भोजनं देहि राजेन्द्र।" दूसरों ने उसकी वाह वाह की। श्लोक की एक पंक्ति ही पूरी हो पाई। अभी तीन पंक्तियाँ और लिखनी थीं।" राजा से भोजन माँगने पर दाल और घी भी माँगना ठीक होगा। इसलिये हम यह भी लिखें-"घृत सूप समन्वितं" एक और ब्राह्मण ने कहा।

"यह तो बहुत अच्छा है।" दूसरों ने कहा। उनके श्लोक की पंक्तियाँ यों बनीं :

"भोजनं देहि राजेन्द्र

घृत सूप समन्वितं"

आधा श्लोक हो गया। अभी आघा बाकी था। परन्तु बिचारे ब्राह्मण सोच

श्री जीतेन्द्र प्रसाद शुक्ल

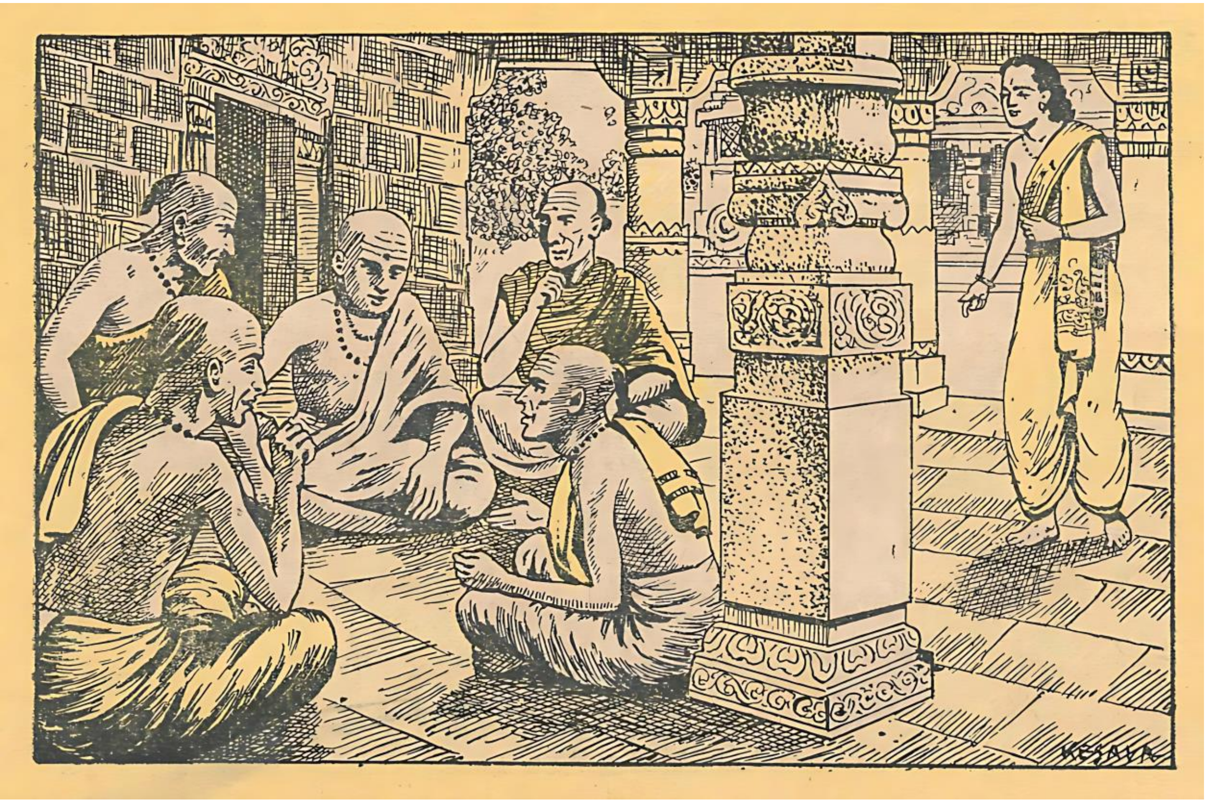
नहीं पा रहे थे कि क्या लिखा जाय? जो दाल वगैरह वे माँगना चाहते थे, उन्होंने दूसरी पंक्ति में माँग ही लिया था। बाकी पंक्तियों में वे क्या लिखें?

उसी समय महाकवि कालिदास वहाँ आये। उन्होंने देखा कि ब्राह्मणों ने श्लोक की दो पंक्तियाँ तो बना ली हैं, पर दो और पंक्तियों के लिये बिचारे माथापच्ची कर रहे हैं। कालिदास को उन्हें देखकर दया आई। उनकी कविता सुनकर राजा भोज एक पैसा भी न देगा, यह वे जानते थे ।

"महाशयो! अगर आपको आपत्ति न हो, तो श्लोक का बचा हुआ हिस्सा मैं लिखे देता हूँ। पूरा श्लोक राजा को सुनाकर जो कुछ मिले, प्राप्त कीजिये।" कालिदास ने कहा।

"इससे अधिक भला हमें और क्या चाहिये? ठीक समय पर तुम भगवान की तरह अवतरित हुए हो। बाकी दो पक्तियाँ तुम लिख दो। तुम्हारा भला हम न भूलेंगे।" ब्राह्मणों ने कहा।

"राजा भोज से भात के साथ दाल और घी तो माँग ही लिया है। शरत्-



ऋतु की चन्द्रमा की चान्दनी की भाँति सफ़ेद भैंस के दूध का दही भी दिलवाने के लिये लिखिये।" कालिदास ने कहा।

ब्राह्मणों के कान में ज्योंही "भैंस के दूध का दही" की बात पड़ी तो वे फूले न समाये। खुशी से पूछने लगे- "लिखें कैसे? कहो तो?"

"माहिषंच शरच्चन्द्र

चन्द्रिका धवलं दधि"

कहकर कालिदास ने उनका श्लोक पूरा कर दिया। यद्यपि उस श्लोक का भाव भले ही उन्हें समझ में न आया हो, पर यह जान कर कि जैसे तैसे इलोक पूरा हो गया है, ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो, कालिदास को धन्यवाद दिया, और वहाँ से चले गये।

अगले दिन वे दरबार में गये। उनको बड़े मुश्किल से राजा का दर्शन मिला। राजा भोज के सामने खड़े होकर सविनय कण्ठस्थ श्लोक पढ़ने लगे।

भोजनं देहि राजेन्द्र

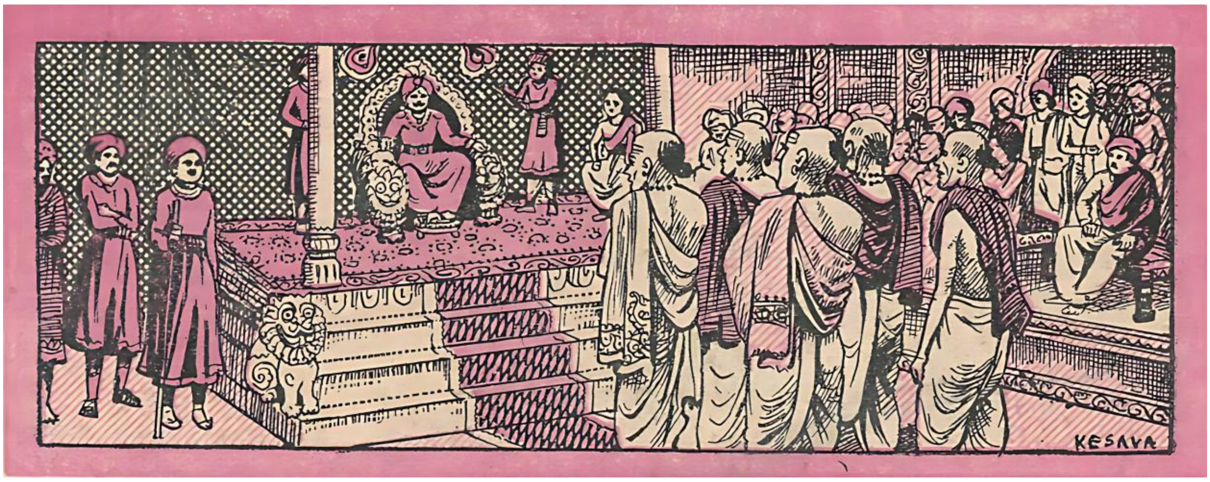
घृत सूप समन्वितं

माहिषंच शरच्चन्द्र

चन्द्रिका धवलंदधि!"

यह श्लोक सुनते ही राजा भोज ने कहा-"इस श्लोक के प्रथम भाग के बनानेवाले को कविता ही नहीं आती। परन्तु दूसरे भाग के लिखनेवाला सिवाय कालिदास के और कोई नहीं हो सकता। इन दो पंक्तियों के लिये एक लाख रुपये फी अक्षर देकर इन ब्राह्मणों को विदा कीजिये।"

ब्राह्मण चकित हो गये। जब दरबार में चारों तरफ़ देखा तो उन्हें कालिदास दिखाई दिये। उन्होंने समझा कि कालिदास ने ही उन्हें भिक्षा दिलवाई है। वे लेकर अपने अपने रास्ते पर चले गये।





पुराने ज़माने में उज्जयिनी में यशस्कर नाम का एक ब्राह्मण रहा करता था। उसका लड़का शशिभूषण बहुत ही सुन्दर और नेक था। जब वह गुरु के पास शिक्षा प्राप्त कर रहा था तो उसका विजयसेन से स्नेह हो गया। वह क्षत्रिय था।

एक बार विजयसेन के साथ उसकी बहन मदिरावती गुरु के पास आई। मदिरावती भी बहुत रूपवती थी। ज्योंही शशिभूषण की नज़र उस पर पड़ी, त्योंही उसको उससे प्रेम हो गया।

मदिरावती ने घर जाकर शशिभूषण के बारे में अपनी माँ को बढ़ा-चढ़ाकर कहा। माता ने विजयसेन से शशिभूषण को एक बार बुला लाने के लिये कहा।

अगले दिन विजयसेन मित्र शशिभूषण को साथ लेकर अपने घर आया। जब विजयसेन अपने पिता से कुछ बातचीत कर रहा था, तब मदिरावती की सहेली धात्रेय ने अकेले में बैठे हुये शशिभूषण को मालती के फूलों की एक माला देकर कहा-"इसको मेरी सहेली मदिरावती ने बिना किसी के जाने तुम्हारे लिये तैयार की है। इसे ले लो।"

"ज़रूरत हुई तो तेरी सहेली के लिये मैं अपने प्राण भी दे दूँगा।" शशिभूषण ने धात्रेय से कहा।

तब से शशिभूषण और मदिरावती अक्सर आपस में बातचीत किया करते । दिन प्रति दिन उनका प्रेम बढ़ता गया।

इस बीच में एक क्षत्रिय युवक ने मदिरावती के पिता के पास आकर कहा कि उसका विवाह मदिरावती से कर दिया जाय। पिता को तो मालूम न था कि उसकी लड़की किसी और से प्रेम कर रही

श्री. सन्तोषकुमारी मल्तानी



थी। इसलिये उसने उस क्षत्रिय युवक का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और विवाह के लिये मुहूर्त भी निश्चय कर दिया।

तब शशिभूषण की बुरी हालत हो गई। उसने सोचा कि कम से कम मदिरावती को एक बार देखकर अपने मन को सान्त्वना दूँ। पर देखने का मौका न मिला।

विवाह का दिन भा गया। बरात के साथ दुल्हा भी आ पहुँचा।

तब तक शशिभूषण आशा लगाये बैठा था कि शायद मदिरावती का विवाह उस व्यक्ति से न हो। वह आशा भी अब जाती रही। शशिभूषण ने सोचा कि इस दुःख को सहने से अच्छा तो आत्म-हत्या कर लेना है। विवाह मण्डप में जाने से पहिले मदिरावती अपनी सहेलियों के साथ, शहर के बाहर वाले मन्दिर में ज़रूर कामदेव की पूजा करने आयेगी। उस मन्दिर के पास ही एक बढ़ का पेड़ है। उस पेड़ से लटककर अगर आत्म-हत्या कर ली, तो कम से कम मदिरावती उसका शव तो देख सकेगी।" यह सोचकर शशिभूषण वहाँ गया।

इस बीच में, मदिरावती की सहेली धात्रेय उस दिन प्रातःकाल शंखहृद नाम के तालाब में स्नान करने गई। जब वह तालाब के किनारे फूल तोड़ रही थी तो उसको सोमदत्त नाम का एक ब्राह्मण नवयुवक दिखाई दिया। एक नौजवान को एकटक घूरता हुआ देख कर धात्रेय ने शर्म से आँखें नीचे कर ली।

उसी समय दूरी पर कुछ शोर सुनाई दिया। जञ्जीरें तोड़कर एक मद मस्त हाथी उन्हीं की तरफ़ तेज़ी से भागा आ रहा था। धात्रेय अभी सोच ही रही थी कि क्या किया जाय, इतने में परदेशी सोमदत्त ने उसे अपने हाथों में उठाया और दूरी पर खड़ी भीड़ में पहुँचा आया।

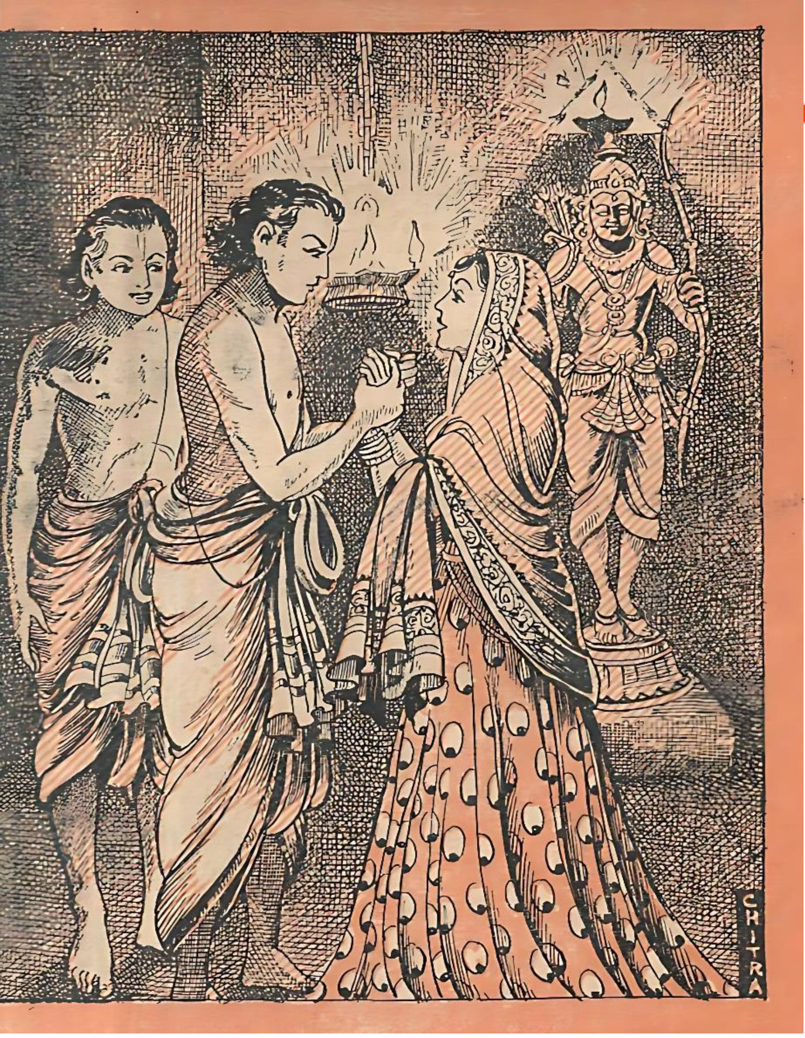
इससे पहले कि वह उस नव-युवक का परिचय पाती, वह मस्त हाथी भीड़ की ओर दौड़ने लगा। लोग जहाँ तहाँ भागने लगे। सोमदत्त भी भागा। जब वह वापिस धात्रेय का हाल जानने के लिये आया तो वह वहाँ न दिखाई दी। उसकी प्रिय सहेली मदिरावती के विवाह का मुहूर्त समीप आ गया था, इसलिये उसे सोमदत्त के बारे में सोचने का मौका ही न मिला।

उसने जिस लड़की की रक्षा की थी, सोमदत्त को उसका नाम भी न मालूम था। उसने सोचा-"कुछ भी हो, जब तक उसको न देख लूँगा, तबतक चैन न लूँगा।"

वह बहुत दूर तक चलता रहा। जब वह चलता चलता मन्दिर के पास गया, तो उसने एक युवक को बढ़ के पेड़ पर से लटका हुआ पाया। सोमदत्त झट पेड़ के पास गया। नवयुवक के शरीर को नीचे उतारकर देखा। शरीर में प्राण था। शशिभूषण बेहोश हो गया था, पर वह मरा न था। सोमदत्त ने उसकी सेवा सुश्रूषा की।

थोड़ी देर में शशिभूषण को होश आया। उसने उठकर सोमदत्त को देखा और कहा- "तुमने मेरे प्राण बचाकर





बड़ी कृपा की। तुम कौन हो? तुम मुझे क्यों जिला रहे हो? मेरा जीवन निरर्थक है।" उसने उसे अपनी कहानी सुनाई।

सब कुछ सुनकर सोमदत्त ने कहा- "अरे नादान! क्या यही पुरुष लक्षण है? मैंने भी तुम्हारी तरह एक कन्या से प्रेम किया है। यह जाने बिना ही कि वह कौन है और कहाँ रहती है, मैं उसकी खोज कर रहा हूँ।" कहते हुये उसने भी अपनी कहानी सुनाई।

वे जब इस तरह बातें कर रहे थे, तो दूरी पर उनको विवाह की शहनाइयाँ सुनाई देने लगी।

"वह देखो। मदिरावती पूजा करने चली आ रही है।" शशिभूषण ने कहा।

"आओ, अगर ऐसी बात है, तो हम मन्दिर में मूर्तियों के पीछे छुप जायें। हो सकता है, हमें भी कोई मौका मिल जाय।" सोमदत्त ने कहा।

उनके मूर्तियों के पीछे छुप जाने के थोड़ी देर बाद मदिरावती ने अपनी सहेलियों के साथ मन्दिर में प्रवेश किया। और सब तो दरवाज़े के पास रह गये। मदिरावती ने मन्दिर के अन्दर जाकर दरवाज़ा बन्द कर लिया। वह कामदेव से प्रार्थना करने लगी-"कामदेव! मैंने तो एक को प्रेम किया और तू मेरा किसी और से विवाह करा रहा है। यदि मेरी इच्छा इस जन्म में पूरी होनेवाली नहीं है, तो कम से कम अगले जन्म में ही शशिभूषण की पत्नी होने का सौभाग्य देकर मुझे अनुगृहीत कर।" वह अपना गला घोंटने लगी।

ठीक उसी समय शशिभूषण मूर्ति के पीछे से कूदकर आया और उसको आत्महत्या करने से उसने बचाया। सोमदत्त भी बाहर निकल आया।

"बातों के लिये समय नहीं है। अन्धेरा हो गया है। तुम अपनी प्रियतमा को मेरे कपड़े पहनाकर किसी और गाँव में ले जाओ। इस बीच में मैं इसके कपड़े पहनकर बाहर जाता हूँ।" सोमदत्त ने सलाह दी।

सोमदत्त ने मदिरावती के कपड़े पहन लिये, और मुँह पर घूँघट निकाल लिया, ताकि उसे कोई पहचान न पाये। किवाड़ खोलकर बाहर आया। सहेलियों ने भी समझा कि मदिरावती ही बाहर आई है। वे गाते-बजाते, खुशी से वापिस चले गये। उनके चले जाने के बाद, शशिभूषण और पुरुष वेष को धारण किये हुये मदिरावती, रात भर जङ्गल में चलकर सबेरे अचलपुर नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ उनको एक ब्राह्मण ने आश्रय दिया। उसने ही वहाँ उनका शास्त्रोक्त विधि से विवाह कराया। और इधर, जब मदिरावती के वेष में सोमदत्त घर पहुँचा तो धात्रेय शंखहृद से नहा-धोकर वापिस आ गई थी। अपने अनुभव को अपनी प्रिय सखी को सुनाने के लिये उसके पास अधिक समय न था। इसलिये धात्रेय ने मदिरावती की बाँह पकड़कर कहा-"सखी! मैं तुम्हें एक बात



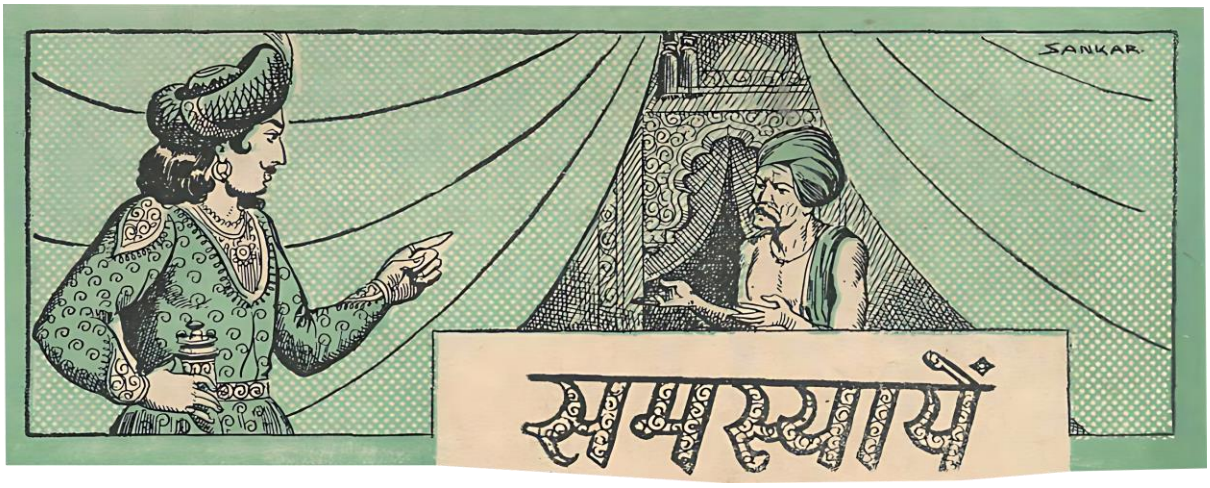
बताना चाहती हूँ।" उसे वह अकेले एक कमरे में ले गई। घूँघट में से धात्रेय को देखकर सोमदत्त आश्चर्य से सोचने लगा-"क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? नहीं तो क्या यह भगवान का अनुग्रह है?"

"सखी! तुम्हारा एक ऐसा व्यक्ति पति होने जा रहा है, जो तुम्हारा प्रेमी नहीं है। तुम्हारा कष्ट मैं जानती हूँ। जब कभी तुम अपने कष्ट न झेल सको तो मेरी बात याद करके ढाढ़स बाँध लेना। क्योंकि मैं भी एक अभागिन हूँ। तुम्हारी तरह मैंने भी एक को प्रेम किया है। परन्तु वे कौन हैं? कहाँ रहते हैं? क्या नाम है? इतना भी नहीं जानती। तुम शायद अपने प्रेमी को देख लो। पर मुझे तो कोई आशा नहीं है।" धात्रेय ने अपनी कहानी सुनाई। यह सुनकर सोमदत्त फूला न समाया। धात्रेय की बात पूरी होते ही उसने अपना मुँह दिखाया। धात्रेय के आनन्द और आश्चर्य की सीमा न रही। जब तक सोमदत्त ने पूरी तरह न बता दिया कि मदिरावती शशिभूषण के साथ कैसे चली गई थी, धात्रेय को अपनी आँखों पर ही विश्वास न हुआ।

"हमारे इस तरह गप्पे मारते रहने से काम नहीं चलेगा। अगर हम भी कहीं जल्दी न भाग गये, तो हमारा भेद भी खुल जायेगा।" सोमदत्त ने कहा।

धात्रेय ने अपने गहनों की एक पोटली बाँधी। सोमदत्त को साथ लिया, पिछवाड़े में से बाहर जाकर, अन्धेरे में, बगीचे में से होते हुये शहर के बाहर चले गये। वहाँ से वे जल्दी जल्दी भाग गये। जाते जाते वे एक ब्राह्मण के गाँव में पहुँचे।वहाँ उनका विधिपूर्वक विवाह हुआ और वे सुख से रहने लगे।





किसी देश में एक गरीब आदमी रहा करता था। उसके लिये अपना गुज़ारा करना मुश्किल हो रहा था। इसलिये उसने राजा के पास जाकर मदद माँगी। राजा ने कहा-"मैं तुम से चार प्रश्न पूछता हूँ। सब से अधिक तेज़ चलनेवाली चीज़ क्या है? सब से अधिक बलवान क्या वस्तु है? सब से अधिक मुलायम और सब से अधिक आनन्दप्रद चीज़ें क्या हैं? अगर तुमने कल तक इन प्रश्नों का उत्तर बता दिया, तो मैं तुम्हारी सहायता करने का प्रयत्न करूँगा।"

वह गरीब उन प्रश्नों का जवाब सोचता सोचता घर पहुँचा। उसे कोई जवाब न सूझ रहा था। वह घबराने लगा। उसकी सोलह वर्ष की एक लड़की थी। व्याकुल पिता को देखकर उसने कहा-"क्यों पिताजी! क्या सोच रहे हो?"

"राजा के पास मदद माँगने गया था। उन्होंने चार प्रश्न पूछे और कल तक जवाब माँगा है। मैं जवाब कैसे बताऊँ?" पिता ने कहा।

प्रश्नों को सुनकर लड़की ने कहा- "बस ! इन्हीं प्रश्नों को लेकर दिमाग़ खराब कर रहे थे पिताजी? सब से अधिक तेज़ हवा है, बलवान भूमि है, क्योंकि बलवान से बलवान प्राणी को भी भूमि ही बल देती है। सब से अधिक मुलायम हाथ है। क्योंकि मुलायम गद्दे पर भी आदमी, हाथ नीचे रखकर सोता है। सब से अधिक आनन्दप्रद निद्रा है। क्योंकि बड़ा दुःख भी नींद में चला जाता है।"

गरीब को यह जवाब सुनकर बड़ी खुशी हुई। अगले ही दिन जाकर उसने राजा को उसके प्रश्नों का उत्तर बता दिया।

श्री बिष्णु कुमार



लड़की ने पूछा-"क्या अभी तक राजा को तुम पर दया नहीं आई है?"

"उसने मुझे एक और समस्या दे दी है। इस तागे से कल तक एक दुपट्टा बुनकर देना है।" पिता ने कहा।

"पिताजी ! इस में कौन सी बड़ी बात है? तुम एक झाड़ू का तिनका लेकर राजा को दो और उनसे कहो कि आज शाम तक उससे एक करघा बनाकर दें। तब मैं गोटेदार दुपट्टा बुनकर दे दूँगी।" लड़की ने कहा।

"ये जवाब क्या तुमने अपने आप स्वयं सोचे हैं? या तुम्हें किसी और ने बताये हैं?" राजा ने पूछा।

"मेरी सोलह वर्ष की लड़की ने बताये हैं।" गरीब ने कहा।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा-"तुम्हारी लड़की क्या इतनी अक्लमन्द है? अच्छा, तो तागे की यह गाँठ ले जाओ और अपनी लड़की को देकर कहो कि कल तक मेरे लिये एक गोटेदार दुपट्टा बुनकर दे दे।" उसने तागे की एक छोटी-सी पोटली गरीब के हाथ में थमा दी।

गरीब हताश हो घर वापिस चला आया। पिता को विह्वल देखकर

गरीब ने झाड़ू का एक तिनका ले जाकर, राजा के सामने अपनी लड़की की बताई हुई बात कही।

राजा ने एक क्षण सोचा, फिर कहा-"तुम्हारी लड़की तो बहुत चालाक मालूम होती है। मैं सौ अण्डे देता हूँ। उन्हें सिकवाकर, अपनी लड़की से कहना कि कल तक १०० मुर्गी के बच्चे भेज दें।"

गरीब घबराने लगा कि उस पर कोई आफ़त आनेवाली है। वह सौ अण्डों को लेकर घर गया। पर उसकी लड़की को

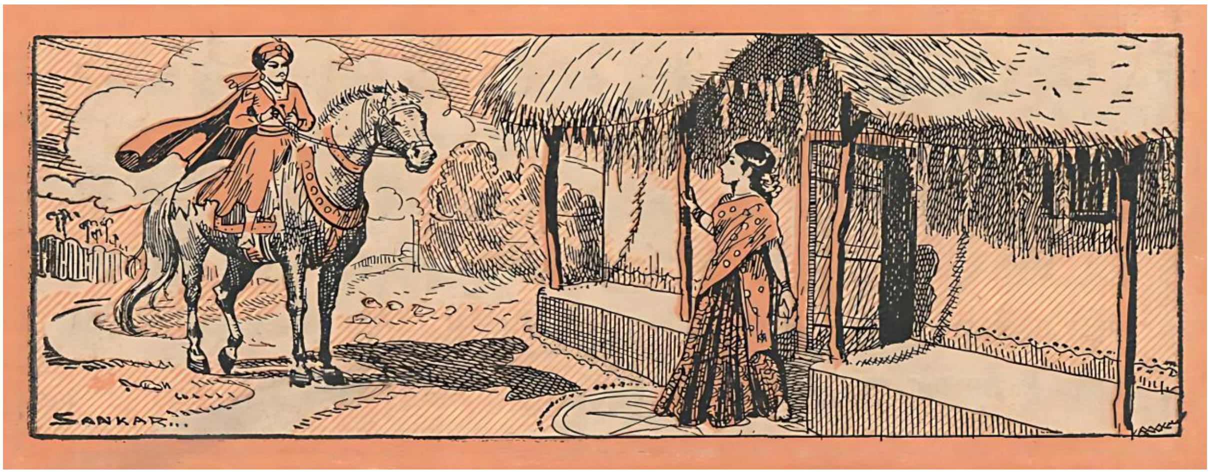
कोई फ़िक्र न थी, उसने उन अण्डों को पकाया, पिता को दबकर खिलाया, और खुद भी खाया। अगले दिन उसने अपने पिता से यों कहा-"पिताजी! राजा के पास जाकर कहो कि अण्डों में से बच्चे निकल आये हैं। परन्तु बच्चे खाना छू तक नहीं रहे हैं। अगर उन्हें एक दिन में तैयार किया हुआ धान न मिला, तो वे शायद कुछ न खाये। इसलिये वह धान दिलाइये। वरना बच्चे मर जायेंगे।" गरीब ने जाकर राजा से कहा। राजा ने कहा-"अपनी लड़की से कहो कि मैं दो मिनिट में तुम्हारे घर आ रहा हूँ।"

यह बात सुनते ही गरीब की लड़की ने सारा घर साफ-सुथरा किया, गोबर पोता, दरवाज़े की चौखट पर हल्दी लगाई, घर के सामने तोरण भी बाँधा। थोड़ी देर में राजा घोड़े पर चढ़कर आया। उसने घोड़ा रोक तो दिया, पर उस पर से उतरा नहीं। राजा का स्वागत करने के लिये आती हुई लड़की ने एक कदम देहली के बाहर रखा और वह यकायक रुक गई।

घोड़े पर से राजा ने उस लड़की से पूछा-"मैं तुम्हारे घर में आ रहा हूँ। या घोड़े को आगे ले जा रहा हूँ ?"

गरीब की लड़की ने मुस्कुराकर कहा-"महाप्रभू! आप मुझ से बड़े हैं, अक्लमन्द हैं, और अधिक पढ़े-लिखे हैं। अगर आप यह बतायें कि मैं अन्दर जानेवाली हूँ या बाहर, तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँगी।"

राजा खुश हुआ। वह घोड़े से उतर आया। उसने मोतियों की एक बड़ी थैली गरीब को दी। बाद में उसने गरीब की लड़की से विवाह कर लिया, और उसको उसने अपनी मुख्य रानी बनाया।





रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – ६